वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656
9 772582 065005

विवेक ज्योति

वर्ष ५८ अंक ३ मार्च २०२०
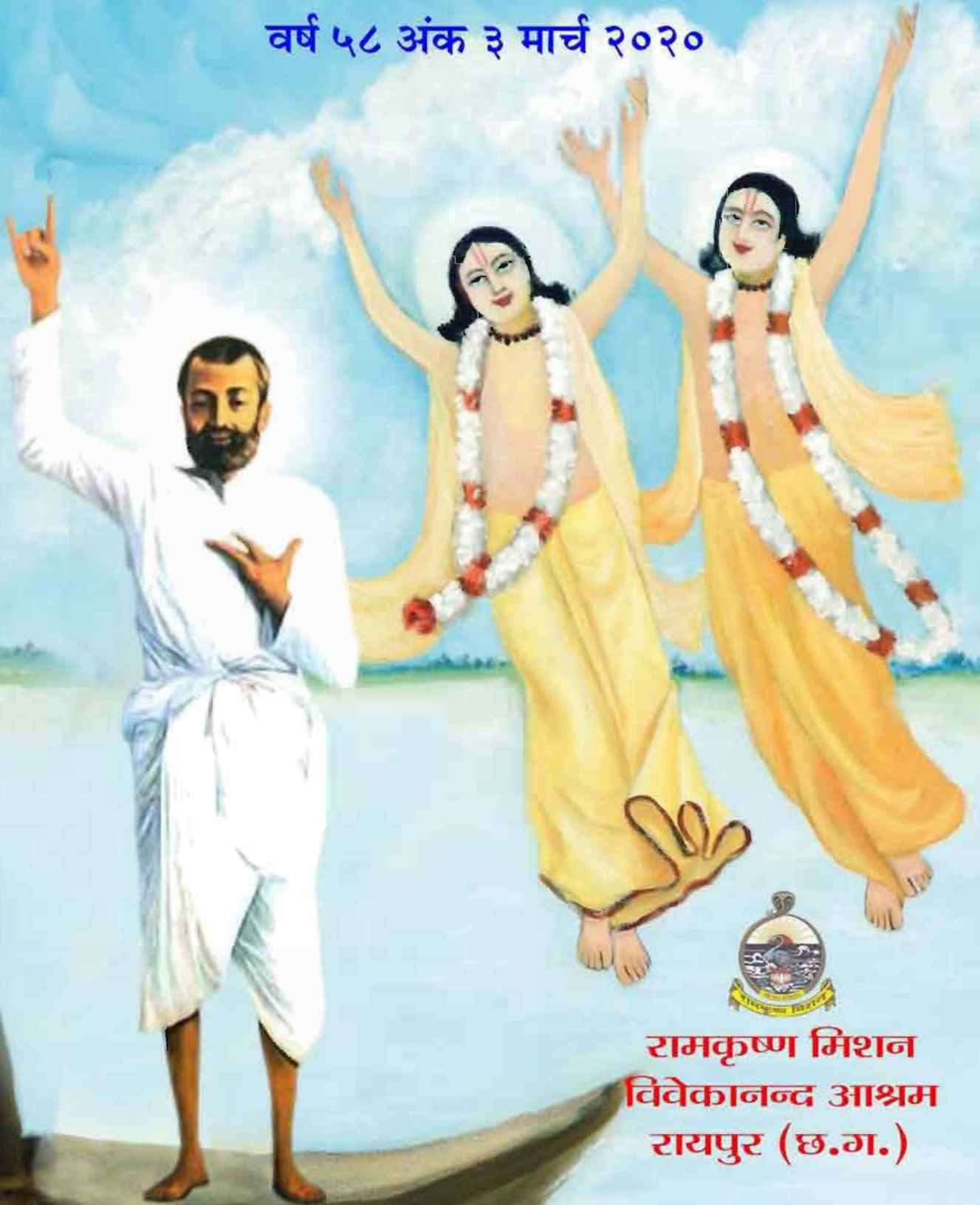
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

मार्च २०२०

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५८
अंक ३

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

ISSN 2582-0656

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

इस आवरण चित्र में श्रीरामकृष्ण देव के श्रीचैतन्य देव और नित्यानन्द प्रभु के दर्शन को दर्शाया गया है। विस्तृत जानकारी के लिए पेज संख्या १०३ द्रष्टव्य।

मार्च माह के जयन्ती और त्योहार

०९	**चैतन्य महाप्रभु**
१०	**होली**
१३	**स्वामी योगानन्द**

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५७ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री संजीव गौतमी ताम्रकार, खारघर, नवी मुम्बई (महा.)	१९०१/-
श्री आशुतोष जोशी, यशवन्त नगर, पुणे (महा.)	१०००/-

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५९३. मुरारी लाल अग्रवाल, सब्जी बाग, पटना, बिहार	लाईब्रेरी इंडियन ऑयल क्लब, से. ५५, नोयडा (उ.प्र.)

शिक्षाष्टकम्

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेय:कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनम्
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ।।

– जो चित्तरूपी दर्पण के मैल को मार्जन करनेवाला है, जो संसाररूपी महादावाग्नि को शान्त करनेवाला है, प्राणियों के मंगलदायिनी कैरव को वितरण करनेवाला है, जो विद्यारूपी वधू का जीवनस्वरूप है और आनन्दरूपी समुद्र को प्रतिदिन बढ़ानेवाला है, जो पूर्णामृत का आस्वादन करानेवाला है, उस श्रीकृष्णसंकीर्तन की जय हो, जय हो!

पुरखों की थाती

विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जन-परिश्रमम्।
न हि वन्ध्या विजानाति गुर्वी प्रसव-वेदनाम्।।६७२।।

– विद्वत्ता लाभ करने में जो परिश्रम लगता है, उसे कोई विद्वान् ही समझ सकता है, वैसे ही जैसे कि किसी बाँझ स्त्री को प्रसूति की पीड़ा को नहीं समझाया जा सकता।

क्रोधो मूलमनर्थानां क्रोध: संसार-बन्धनम्।
धर्म-क्षयकर: क्रोध: तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत्।।६७३।।

– क्रोध समस्त विपत्तियों का मूल कारण है, क्रोध संसार बन्धन का कारण है, क्रोध धर्म का नाश करने वाला है, इसलिए क्रोध का त्याग कर देना चाहिये।

मनसा चिन्तितं कार्यं वाचा नैव प्रकाशयेत्।
मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं कार्ये चापि नियोजयेत्।।६७४।।

– मन में सोचे हुए कार्य को वाणी से प्रकट नहीं करना चाहिये। मंत्र के समान उसकी गोपनीयता की रक्षा करते हुए उसे कार्य रूप में परिणत करना चाहिये।

आलस्योपहता विद्या परहस्तं गतं धनम्।
अल्पबीजहतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम्।।६७५।।

– आलस्य से विद्या का नाश होता है, दूसरे के हाथ में रखने से धन का नाश होता है, बीज की कमी से खेती का नाश होता है और नेता के अभाव में सेना का नाश होता है।

चैतन्य के आनन्द की अभिव्यक्ति होली : श्रीरामकृष्ण और श्रीचैतन्य के सान्निध्य में

धर्मभूमि भारतवर्ष में लौकिक, वैदिक और पौराणिक सभी पर्वों, त्यौहारों का महत्त्व है। अपना-अपना एक वैशिष्ट्य है, लेकिन दीपावली या दिवाली और होली ये दोनों विशेष रूप से जन-जीवन में अपना प्रभाव डालते हैं, एक विशेष उद्दीपना करते हैं, जगत को एक विशेष सन्देश देते हैं। चैतन्य के प्रकाश की अभिव्यक्ति है दीपावली और उसके आनन्द की अभिव्यक्ति होली है। दीपावली में अन्तर्बाह्य, घर-बाहर सदैव प्रकाश विद्यमान होता है। मानो दीपावली मानव के अन्तर्बाह्य, अन्तरंग और बहिरंग, विवेक, ज्ञान, प्रकाश की उद्दीपना करती है, यह व्यष्टि और समष्टि के अन्तश्चेतना के प्रकाश का द्योतक है। व्यक्ति स्वयं के आत्मदीप को जलाकर उससे बाहर समाज और राष्ट्र के प्रदीप को जलाए और सर्वत्र चिन्मय ज्ञान-प्रकाश से सम्पूर्ण चराचर प्रकृति को ज्योतिर्मय कर दे।

ज्ञान से आनन्द की प्राप्ति होती है। ईश्वर को सच्चिदानन्दमय कहा जाता है। ब्रह्मवेत्ता ईश्वरमय पुरुष, ज्ञानी पुरुष, सदा आनन्द में रहते हैं। दीपावली के ज्ञान-प्रकाश के विकसित करने के कई मास बाद आनन्द का विकिरण करने होली आती है। मानो ज्ञान-प्रकाश से आलोकित व्यक्ति आनन्द से परिपूर्ण सबको उस आनन्द को मुक्त हस्त से वितरण करने के लिए उपयुक्त समय की व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहा हो और होली के रूप में उसे अवसर मिल गया है। होली उस परमानन्द की अभिव्यक्ति का द्योतक है। समस्त प्राणियों के हृदय में परमात्मा विद्यमान हैं। परमात्मा आनन्दमय हैं। अत: जीव का मूल स्वभाव आनन्दमय है। मायावशात् संसार के आधि-व्याधियों के कारण उसका प्रकृत स्वभाव आच्छन्न रहता है। जब साधना और ईश्वर कृपा से उसका मायावरण हट जाता है, तो उसे अपने सच्चिदानन्दमय स्वरूप का बोध हो जाता है। तब वह सदा भगवद्-भजन-कीर्तन आदि में मग्न हो जाता है। होली के दिन मानो मानव के स्वाभाविक मूल स्वरूपजनित आनन्द की बाह्य अभिव्यक्ति हो जाती है। सर्वत्र सभी आनन्दातिरेक में नाचते गाते हैं। जैसे परम सत्ता, सर्ववर्ण-धर्म-सम्प्रदायातीत होकर सबको सुख-शान्ति प्रदान करती है, वैसे ही होली में सभी जाति-धर्म-सम्प्रदाय के लोग अपने क्षुद्र अहंकारयुक्त भेदपरक बन्धनों को तोड़कर भेदातीत हो परस्पर उन्मुक्त हृदय से मिलते-जुलते और आनन्द मनाते हैं।

होली भक्त के रक्षार्थ परमात्मा के, भगवान के प्राकट्य का स्मरणोत्सव है। क्योंकि हिरण्यकशिपु की बहन होलिका भक्त प्रहलाद को हरिभक्ति से विमुख करने, उन्हें जलाकर मारने के लिये अपनी गोद में लेकर बैठ गयी। भगवान ने अपने अग्निरूपी माया का विस्तार किया। भक्त प्रह्लाद हेतु अग्नि शीतल हो गई और होलिका उसी अग्नि में जलकर मृत्यु को प्राप्त हो गयी। भक्त प्रह्लाद के प्राण बचे और ईश्वरद्रोही होलिका जलकर मर गई, इस उपलक्ष्य में भी होली का महोत्सव होता है। इसमें ईश-द्रोही हिरण्यकशिपु और होलिका की भर्त्सना के होली-गीत और ईश्वर के स्वरूप, उनकी लीलाओं के होली-गीत गाए जाते हैं।

होली और श्रीचैतन्यदेव

पश्चिम बंगाल के नवद्वीपचन्द्र श्रीचैतन्यदेव का आविर्भाव फाल्गुन पूर्णिमा को हुआ था। जिस प्रकार श्रीराम का जन्मोत्सव चैत्र रामनवमी और श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव भाद्र कृष्णाष्टमी को धूमधाम से मनाया जाता है, उसी प्रकार श्रीचैतन्यदेव का जन्मोत्सव होली के दिन बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है। भक्ति-अवतार श्रीचैतन्य देव ने नाम-संकीर्तन से भक्ति-सुरसरि को प्रवाहित किया, जिसकी मधुर तरंगों ने आज सम्पूर्ण विश्व को आप्लावित किया है।

भगवान श्रीरामकृष्णदेव और चैतन्यदेव

भगवान श्रीरामकृष्णदेव होली के दिन भक्तों के साथ बैठकर सत्संग कर रहे हैं, इसका उल्लेख मिलता है। श्रीरामकृष्ण देव की चैतन्यदेव के सम्बन्ध में उच्च धारणा थी। वे अपने उपेदशों के दौरान भक्तों के साथ कई बार चैतन्यदेव की लीलाओं और उनकी महिमा का गुणगान करते थे। १८ जून, १८८३ को नवद्वीप गोस्वामी के साथ ईश्वरीय प्रसंग करते हुए श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था, ''भक्ति के परिपक्व होने पर भाव होता है, फिर महाभाव, फिर प्रेम, फिर वस्तु (ईश्वर) का लाभ होता है। गौरांग को महाभाव और प्रेम हुआ था। इस प्रेम के होने पर मनुष्य जगत को

तो भूल ही जाता है, बल्कि अपना शरीर, जो इतना प्रिय है, उसकी भी सुधि नहीं रहती। गौरांग को यह प्रेम हुआ था। समुद्र को देखते ही यमुना समझ कर वे उसमें कूद पड़े। जीवों को महाभाव या प्रेम नहीं होता, उनको भाव तक ही होता है। फिर गौरांग को तीन अवस्थाएँ होती थीं। ... अन्तर्दशा में वे समाधिस्थ रहते थे, अर्धबाह्य दशा में केवल नृत्य कर सकते थे और बाह्य दशा में नाम-संकीर्तन करते थे।''[१]

ठीक इसी प्रकार के विचार ५ अप्रैल, १८८४ को भक्तों के साथ सत्संग करते हुए श्रीरामकृष्ण ने कहा था – ''...प्रेमोन्माद कैसा है जानते हो? उस अवस्था के आने पर संसार भूल जाता है। अपनी देह जो इतनी प्यारी वस्तु है, वह भी भूल जाता है। यह अवस्था चैतन्यदेव की हुई थी। समुद्र में कूद पड़े, समुद्र का बोध नहीं। मिट्टी में बार-बार पछाड़ खाकर गिरते हैं, न भूख है, न नींद, शरीर का बोध भी नहीं है!''[२]

३० जून, १८८४ को पण्डित शशधर के साथ वार्तालाप करते हुए श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – ''चैतन्यदेव का ज्ञान सौर-ज्ञान था – ज्ञानसूर्य का प्रकाश था और उनके भीतर भक्तिचन्द्र की शीतल किरणें भी थीं। ब्रह्मज्ञान और भक्तिप्रेम, दोनों थे।''[३]

चैतन्यदेव की भाववस्था के सम्बन्ध में अपनी धारणा स्पष्ट करते हुए श्रीरामकृष्णदेव कहते थे – ''हाथी के बाहर के दाँत जिस प्रकार शत्रु पर आक्रमण करने तथा भीतर के दाँत खाद्य पदार्थ का चर्वण कर अपने शरीर के पोषण के लिए रहते हैं, ठीक उसी प्रकार गौरांगदेव के भीतर तथा बाहर दो प्रकार के भाव विद्यमान थे। बाहर मधुरभाव के सहारे वे लोककल्याण-साधन करते थे और भीतर अद्वैतभाव से प्रेम की चरम परिपुष्ट अवस्था को प्राप्त कर ब्रह्मभाव में प्रतिष्ठित हो स्वयं भूमानन्द का अनुभव करते थे।''[४]

किसी भगवद्भक्त को एक सन्त, महात्मा, आचार्य, गुरु, लोग मान लेते हैं, लेकिन उन्हें अवतार के सम्बन्ध में स्वीकृति कठिन हो जाती है। चैतन्यदेव अवतार थे या नहीं, इस सम्बन्ध में भी साधकों और बुद्धिजीवियों के मन में संशय होता रहा है। तत्कालीन समाज भी इससे वंचित नहीं था। इस सम्बन्ध में स्वामी सारदानन्द जी लिखते हैं – ''श्रीगौरांगदेव के अवतारत्व के सम्बन्ध में उस समय हममें से अधिकांश के हृदय में सन्देह विद्यमान था, यहाँ तक कि हममें से कई लोग ऐसा समझते थे कि निम्न श्रेणी के लोगों को ही 'वैष्णव' कहा जाता है, और इस सन्देह को दूर करने के लिये बहुधा श्रीरामकृष्ण देव से इस विषय में पूछा भी करते थे। इसके उत्तर में श्रीरामकृष्णदेव ने एक दिन हमसे कहा था, 'मुझे भी उस समय ऐसा संशय होता था, मैं भी यह सोचता था कि पुराण, भागवत आदि में कहीं उनका कोई उल्लेख तक नहीं है, फिर भी चैतन्यदेव को अवतार कहा जाता है। उनके अनुयायियों ने खींच-तानकर उन्हें अवतार बना डाला है। किसी भी तरह यह विश्वास नहीं होता था कि वे अवतार हैं। मथुर के साथ मैं नवद्वीप पहुँचा। मैंने सोचा कि यदि वे अवतार ही हों, तो वहाँ पर कुछ-न-कुछ प्रकाश अवश्य रहेगा, देखने से ही पता चल जायेगा। (देवभोग के) कुछ प्रकाश को देखने के निमित्त बड़े गुँसाई, छोटे गुँसाई के घर में ढूँढ़-ढूँढ़कर मैं देवमूर्तियों का दर्शन करता रहा, कहीं भी मुझे कुछ नहीं दिखायी दिया, सर्वत्र ही मैंने एक-एक काठ के पुरुष को हाथ उठाकर खड़े रहते देखा! देखकर मेरा मन उदास हो गया। सोचने लगा, व्यर्थ में ही मैं यहाँ आया। तदनन्तर लौटने के लिये जब मैं नाव पर सवार हुआ, उसी समय मुझे एक अद्‌भुत दर्शन प्राप्त हुआ। दो सुन्दर बालक, ऐसा सुन्दर रूप मैंने कभी देखा नहीं था – तप्तकांचन जैसा वर्ण, किशोरावस्था, मस्तक के चारों ओर एक ज्योतिर्मण्डल। अपने हाथों को उठाकर मेरी ओर देख हँसते हुए आकाश-मार्ग से दौड़े चले आ रहे हैं। तत्काल ही 'वह देखो, आ रहे हैं, आ रहे हैं' कहकर मैं चिल्ला उठा। मेरे यह कहते ही वे दोनों मेरे समीप आकर (अपने शरीर को दिखाते हुए) इसके अन्दर प्रविष्ट हो गये और मैं बाह्य चेतनारहित हो गिर पड़ा। जल में ही मैं गिर जाता, हृदय मेरे निकट था, उसने मुझे पकड़ लिया। इसी तरह बहुत कुछ दिखाकर उन्होंने मुझे यह समझा दिया कि वास्तव में ही वे अवतार हैं, उनके भीतर ईश्वरीय शक्ति का विकास है।''[५]

अत: इन दो महापुरुषों के सान्निध्य का अनुभव करते हुए आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में होली मनाएँ। ○○○

सन्दर्भ – १. श्रीरामकृष्णवचनामृत अखण्ड, पृ. २४९, **२.** वही पृ. ४८८, **३.** वही, पृ. ५५८, **४.** वही, पृ. २५०, **५.** लीलाप्रसंग, खण्ड २, पृ. ६३५

योगशास्त्र में समाधि

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

पतंजलि प्रणीत अष्टांग योग में समाधि आठवाँ तथा अंतिम अंग है। वह लक्ष्य है और बाकी के सात उसके अंग हैं। इन अंगों का एक भिन्न प्रकार से भी विभाजन किया जाता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये प्रथम पाँच अंग बहिरंग माने जाते हैं तथा धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरंग कहे जाते हैं। ये अन्तरंग एक साथ ही प्रकट होते हैं। यानि धारणा के परिपक्व होने पर ध्यान और उसके स्थिर होने पर समाधि होती है। अत: इन तीनों को संयम भी कहा जाता है – '**त्रयमेकत्र संयमः**'।

द्वितीय योगसूत्र '**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**' पर टीका करते हुए व्यास देव कहते हैं – '**निरोधः समाधिः**'। तात्पर्य यह कि उनके अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध होने पर स्वाभाविक रूप से समाधि ही होगी। या यों कहें कि समाधि की स्थिति में ही चित्त की वृत्तियों का ठीक-ठीक निरोध होता है। इसी प्रकार समाधि, योग का साध्य और साधन दोनों है। लेकिन अधिकांश लोगों के लिए ध्यान ही इतना कठिन होता है कि समाधि का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अत: भले ही श्रीरामकृष्ण जैसे अवतारी पुरुषों के लिये समाधि सहज और स्वाभाविक हो, लेकिन हमारे लिये तो वह कल्पना और बौद्धिक जानकारी का ही विषय है। इस बात को स्वीकार कर ही हम उसके बारे में विचार करने के लिए प्रवृत्त होते हैं।

हृदय, भ्रूमध्य, सिर का ऊपरी भाग या सहस्त्रार आदि में से किसी एक स्थान पर मन को स्थिर करना धारणा कहलाता है। (यो.सू.३.१) अब, उसी स्थान पर किसी एक ही ध्यान के विषय का निरवच्छिन्न वृत्ति प्रवाह बनाए रखना ही ध्यान है – **तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्**। (यो.सूत्र ३.२) ध्यान के विषय बहुत हो सकते हैं। स्वयं पतंजलि योगसूत्र के तृतीय अध्याय में बहुत से विषयों का उल्लेख करते हैं तथा उन विषयों पर एकाग्रता के परिणाम या फल का वर्णन करते हैं।

जब साधक चित्त को एक स्थान या केन्द्र विषय में बाँधकर रखने में तथा उसी स्थान पर एक ही प्रकार की वृत्ति का प्रवाह बनाए रखने में सफल होता है, तो वह स्वाभाविक रूप से अन्तरंग साधन के तीसरे अंग समाधि को प्राप्त करता है। उसकी परिभाषा पतंजलि ने इस प्रकार की है – **तदेव-अर्थमात्रनिर्भासा स्वरूप-शून्यमिव समाधिः**। अर्थात् वहीं पर (ध्येय विषय के) अर्थ मात्र का प्रकाश एवं ध्याता के स्वरूप के मानो विलय को समाधि कहते हैं। इसे थोड़ा समझ लें।

प्रत्येक ध्येय विषय में तीन बातें होती हैं – उसका नाम या शब्द, उसका अर्थ तथा उसके ध्यान से होनेवाला ज्ञान। ये तीनों समान्यत: अभिन्न रूप से विद्यमान रहते हैं। उदाहरण के लिए गाय को ही लें। 'गाय' शब्द का अर्थ एक पशु विशेष है तथा ध्यान करने पर तद्विषयक ज्ञान मन में होता है। पर हम तीनों को अभिन्न रूप से नहीं जानते। प्रस्तुत सूत्र के अनुसार समाधि में गाय के शब्द का अर्थ, शब्द और ज्ञान से पृथक् रूप मन में पैदा होता है। द्वितीयत: जब हम किसी वस्तु का ध्यान करते हैं, तब हमें यह बोध बना रहता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ। लेकिन समाधि में यह मानो विलुप्त हो जाता है। यानि ध्येय विषय का अर्थ ध्याता की अपनी स्वयं प्रतीति के बिना बना रहता है।

धारणा, ध्यान और समाधि का सम्बन्ध एक अन्य प्रकार से भी बताया गया है। ... उपनिषद के अनुसार यदि मन १२ सेकेण्ड के लिए एकाग्र हो, तो एक धारणा है। यदि वह १२X१२ अर्थात् १४४ सेकेन्ड के लिए एकाग्र हो, तो यह ध्यान हुआ और यदि १२X१२X१२ अर्थात् २८ मिनट और ४८ सेकेन्ड तक निरन्तर धारा प्रवाह एकाग्रता बनी रहे, तो वह एक समाधि होगी। संक्षेप में, चित्त की एकाग्रता की चरमावस्था समाधि होती है, जिसमें ध्याता अपने आपको भी भूलकर ध्यान के विषय के साथ मानो एक हो जाता है।

समाधि की इस सामान्य जानकारी के बाद आइये अब देखें कि पतंजलि के अनुसार कितने प्रकार की समाधियाँ होती हैं। यह विषय चित्त की सतह पर उठ रही वृत्तियों या प्रत्ययों के प्रकार तथा चित्त की गहराई या भूमियों से सम्बन्धित है। पतंजलि के अनुसार चित्तवृत्तियों के प्रकार के

अनुसार चार प्रकार की समाधियाँ होती हैं – वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता (यो.सू. १.१७)। अगर समाधि का विषय पुस्तक, चित्र, मूर्ति, मंदिर आदि स्थूल विषय हो, तो यह वितर्क समाधि कहलाती है। करुणा, दया, सत्य, आदि सूक्ष्म विषयों पर होनेवाली समाधि विचार समाधि है। यह तो स्पष्ट ही है कि ये दोनों समाधियाँ बाह्य या ग्राह्य से सम्बन्धित हैं। जब समाधि का विषय मन या इन्द्रियाँ अर्थात् विषयों को ग्रहण करनेवाली वस्तुएँ होती हैं, तब उस समाधि को आनन्द समाधि कहते हैं। अस्मिता समाधि में समाधि का विषय ग्रहीतृ या विषयों को ग्रहण करनेवाली ईकाई होता है।

इन चारों प्रकार की समाधियों में चित्त में एक-न-एक विषय का ज्ञान बना रहता है। अत: ये चार संप्रज्ञान समाधियाँ कहलाती हैं। लेकिन जब बार-बार चित्तवृत्ति के निरोध के अभ्यास से चेतन मन का यह एक विषय-विषयक वृत्ति-प्रवाह भी निरुद्ध होकर केवल चित्त की भूमि में निरोध का संस्कार मात्र बचा रहता है, तब उस समाधि को असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं – '**विराम प्रत्यय अभ्यासपूर्व: संस्कार शेषोऽन्य:**।' यह समाधि असंप्रज्ञात इसलिए कहलाती है कि इसमें चेतन स्तर पर कोई प्रज्ञा या विशेष ज्ञानात्मक वृत्ति नहीं रहती। प्रत्यय शब्द से अभिहित सभी ज्ञानात्मक वृत्तियाँ इस समाधि में निरुद्ध हो जाती हैं। पर फिर भी यहाँ निरोध संस्कार बने रहते हैं। चित्तवृत्ति निरोध के प्रयास के फलस्वरूप जो संस्कार चित्त भूमि में पड़ते हैं, वे निरोध संस्कार हैं।

चार प्रकार की संप्रज्ञात समाधियाँ और एक असंप्रज्ञात समाधि, ये पाँचों समाधियाँ सबीज समाधि की श्रेणी के अन्तर्गत हैं, क्योंकि इनमें या तो संस्कार या संस्कार और प्रत्यय दोनों बने रहते हैं और पुन: चित्त का व्युत्थान या बहिर्मुखी अवस्था प्राप्त हो सकती है। लेकिन पतंजलि एक कदम आगे जाकर कहते हैं कि निरोध का प्रयास करते रहने पर एक ऐसी स्थिति आती है कि स्वयं निरोध संस्कारों का भी निरोध हो जाता है। तब चित्त में न प्रत्यय और न संस्कार कुछ भी नहीं बचता। वह समाधि निर्बीज समाधि कहलाती है। ''**तस्याऽपि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीज: समाधि:**।'' इसके बाद व्युत्थान सम्भव नहीं है और योगी २१ दिन में शरीर त्याग देता है।

इन समाधियों के अतिरिक्त एक और महत्त्वपूर्ण समाधि का उल्लेख पातंजल योग सूत्र में किया गया है। एक उच्चकोटि के योगी को समाधि के फलस्वरूप सर्वज्ञत्वादि सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। इन सिद्धियों की प्राप्ति में समर्थ होते हुए भी जब योगी राग-द्वेष शून्य हो उसका तिरस्कार कर देता है, तो उसे धर्ममेघ नामक समाधि प्राप्ति होती है। (यो.सू. ४.२९) चित्त जब पूर्ण रूप से आत्मदर्शन के भाव से परिपूर्ण हो जाता है, तब यह समाधि होती है। जिस प्रकार मेघ जल की वर्षा करते हैं, उसी प्रकार इस समाधि में परमधर्म की मानो वर्षा होती है। साधक बिना प्रयत्न के ही कृत-कृत्य हो जाता है। आनन्द, विवेक, वैराग्य और मुक्ति आदि स्वत: ही उस योगी से निर्झरित होते हैं। इस समाधि का श्रीरामकृष्ण से श्रेष्ठ उदाहरण और क्या हो सकता है?

वेदान्त में भी समाधि को महत्त्व दिया गया है। अद्वय ब्रह्म तथा उसका प्रतिपादन करनेवाले 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि महावाक्यों का श्रवण, विधिवत् मनन एवं उसके द्वारा प्राप्त निर्णय पर मन को बनाए रखना अर्थात् निदिध्यासन, ये तीन अद्वैत वेदान्त के अन्तरंग साधन हैं। निरन्तर एक ही प्रकार के अद्वैत विषयक विचारों को बनाए रखने रूप निदिध्यासन के परिणामस्वरूप समाधि होती है। यह समाधि दो प्रकार की हो सकती है – सविकल्प और निर्विकल्प। सविकल्प समाधि में अद्वितीय ब्रह्म-वस्तु का चित्त में निरन्तर प्रवाह बना रहता है, किन्तु ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय पदार्थ का भेद बना रहता है। जैसे मिट्टी के बने हाथी का भान होते हुए भी यह मिट्टी ही है, इस बोध के साथ हाथी का बोध भी बना रहता है, वैसे ही अद्वैत बोध के साथ-ही-साथ द्वैत का भी बोध बना रहता है। लेकिन निर्विकल्प समाधि में चित्त पूरी तरह अद्वय ब्रह्म में लीन हो जाता है और ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की प्रतीति नहीं रहती। इसकी तुलना नमक के जल में पूरी तरह घुलने की स्थिति से की जाती है, जहाँ नमक और जल को पृथक् नहीं किया जा सकता।

दृग्-दृश्य-विवेक नामक ग्रन्थ में चार प्रकार की सविकल्प और दो प्रकार की निर्विकल्प समाधियाँ बताई गई हैं। नाम और रूप इन दोनों की उपेक्षा कर सच्चिदानन्द पर हृदय में या बाहर समाधि अर्थात् चित्तवृत्ति निरोध, लगाई जा सकती है। सविकल्प समाधि दो प्रकार की समाधियाँ हैं। काम आदि जो चित्त या दृश्य के धर्म हैं तथा चेतन आत्मा उसका साक्षी

शेष भाग पृष्ठ १३४ पर

पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और रामकृष्ण संघ

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

महाकवि पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी के पिता पण्डित रामसहाय त्रिपाठी मूलत: उत्तर प्रदेश उन्नाव जिले के गढकोला गाँव के निवासी थे। वे बंगाल के मेदिनीपुर जिले के महिषादल राज्य में सिपाही की नौकरी के लिए आए और वहीं बस गए। वहीं बसन्त पंचमी के दिन ११ फरवरी, १८९६ को निरालाजी का जन्म हुआ। (लिली कथा संग्रह में उनकी जन्मतिथि २१ फरवरी, १८९९ दी गयी है।) निरालाजी के पिताजी की आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी नहीं थी। निरालाजी को बचपन में कई विपत्तियों का सामना करना पड़ा। वे जब तीन वर्ष के थे, तब उनकी माँ का देहान्त हो गया। बीस वर्ष की आयु में उनके पिता की भी मृत्यु हो गई। १९०८ में निरालाजी का विवाह हुआ। अपनी पत्नी की प्रेरणा से ही निरालाजी ने हिन्दी भाषा सीखना प्रारम्भ किया। निरालाजी ने हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने स्वतन्त्र रूप से हिन्दी, बंगला, अँग्रेजी, संस्कृत भाषा का विशेष ज्ञान अर्जित किया। पहले विश्व-युद्ध के उपरान्त फैली महामारी में उनकी धर्मपत्नी तथा सगे-सम्बन्धियों की मृत्यु हो गई। १९१८ ई. से १९२२ के मध्य तक निरालाजी महिषादल राज्य में सेवारत थे। यहीं वे श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी प्रेमानन्द जी के सान्निध्य में आये। उनके सान्निध्य से निरालाजी के जीवन को नयी दिशा मिली। बाद में स्वामी सारदानन्द जी से उनकी मंत्र-दीक्षा हुई।

पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

निरालाजी आधुनिक काल के महान छायावादी लेखक और कवि थे। हिन्दी साहित्य जगत में वे विद्रोही कवि के रूप में परिचित थे। अन्धानुकरण के प्रति तीव्र विद्रोह उनकी कविताओं में आरम्भ से अन्त तक दीखता है। १९२३ में वे 'मतवाला' नामक मासिक के सम्पादक मंडल के सदस्य थे तथा स्वतंत्र रूप से लेखन भी कर रहे थे। १९२९ तक उन्होंने यह कार्य किया। फिर वे कलकत्ता छोड़कर लखनऊ गये। वहाँ वे 'सुधा' नामक मासिक का सम्पादन करने लगे। १९४० तक वे लखनऊ में थे। वहाँ उन्होंने हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वे कभी इलाहाबाद, तो कभी उन्नाव में रहकर कार्य करने लगे। अन्त में १९४२ में वे इलाहाबाद में ही स्थायी रूप से निवास करने लगे। यहाँ भी उन्होंने स्वतन्त्ररूप से कार्य किया। १५ अक्तूबर, १९६१ को उनकी मृत्यु हुई। आज वे इस धरातल पर नहीं हैं, किन्तु हिन्दी साहित्य जगत में विशेष योगदान के कारण वे अमर हैं।

निरालाजी अपनी युवावस्था में बेलूड़ मठ जाया करते थे। दरिद्रनारायण की सेवा में वे पानी भरने की सेवा करते थे। एक बार श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य स्वामी प्रेमानन्द जी महिषादल आए थे। इस प्रसंग का विस्तृत वर्णन निरालाजी ने अपनी कविता में किया है।

३ मार्च, १९१७ को श्रीरामकृष्ण देव के उत्सव में भाग लेने के लिये स्वामी प्रेमानन्द अन्य साधु-भाइयों स्वामी अक्षरानन्द, स्वामी वरदानन्द के साथ मेदिनीपुर गये। उन्हें वहाँ से महिषादल लाने के लिये निरालाजी को भेजा गया। महिषादल के राजा के दीवानजी ने उन्हें अपने घर आमन्त्रित किया था। महिषादल के राजा की श्रीरामकृष्ण देव के शिष्यों पर विशेष श्रद्धा नहीं थी। उनकी धारणा थी कि यदि तीन हाथ जटा न हो, तो वह साधु नहीं हो सकता। उन्हें ऐसे भी लगता था कि साधु के पास चिलम और धुनी होनी चाहिए। तब राजा उनकी मदद करता था।

स्वामी प्रेमानन्द जी का महिषादल के समारोह में बहुत स्वागत किया गया। महाराज का गला पुष्पहारों से भर गया। महाराज ने हँसते हुए कहा, ''आपने मुझे काली माता बना दिया है।'' एक खेत में जमीन को समतल कर मंडप बनाया गया। सर्वत्र तोरण लगाए गए। दरवाजे के दोनों ओर मंगल कलश रखे गए। व्यासपीठ को पुष्पलताओं से सुशोभित

किया गया। भगवान श्रीरामकृष्ण का चित्र एक टेबल पर रखकर उसे फूलों से सुन्दर सजाया गया था। मृदंग के ताल पर कीर्तन आरम्भ हुआ। श्रीठाकुर की भक्तिभाव से विशेष पूजा-अर्चना की गयी। कार्यक्रम हेतु आबाल-वृद्ध सभी आमन्त्रित थे। राज्य के अनेक अधिकारी भी उपस्थित थे।

ब्रह्मचारी अक्षयचैतन्य 'प्रेमानन्देर प्रेमकथा' ग्रंथ में वर्णन करते हैं – ''३ मार्च, १९१७ को स्वामी प्रेमानन्द मेदिनीपुर आये थे। बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द)ने स्वामी वरदानन्द जी से दरिद्र-नारायण की सेवा देखने के लिए चलने को कहा। स्वामी वरदानन्दजी, बाबूराम महाराज और अन्य भक्त साथ गये। दरिद्र-नारायण की सेवा के लिए खिचड़ी, अनेक सब्जियाँ, मिठाइयाँ बनाई गई थीं। सभी स्तर के लोग एक ही पंक्ति में बैठे थे। मुझे ऐसा लगा कि दरिद्र-नारायण की सेवा देखकर बाबूराम महाराज भावाविष्ट हैं। मैंने देखा कि वे दोनों हाथों से शरीर को बार-बार दबाकर मन को शरीर पर लाने का प्रयास कर रहे हैं। वहाँ अनेक प्रकार के मैले-कूचैले लोग बैठकर भोजन कर रहे थे। उन्होंने उनमें से एक की पत्तल से दो-तीन कण उठाकर मुँह में डाले। 'आप ये क्या कर रहे हैं' ऐसा हमारे बार-बार टोकने पर भी वे कहते रहे, ''यह तो नारायण का प्रसाद है।''

स्वामी प्रेमानन्द

कार्यक्रम की समाप्ति के बाद एक वरिष्ठ राजकर्मचारी महाराज को घर ले गये। वहाँ दीवान साहब कबीर के दोहों का बंगाली अनुवाद महाराज को सुना रहे थे। निरालाजी महाराज को सुनाने के लिए तुलसी रामायण लेकर आये। महाराज की आज्ञा से वे सुर में रामायण गाने लगे। सुतीक्ष्ण श्रीरामजी को मिलने आते हैं और उन्हें अपने गुरु के पास ले जाते हैं, यह प्रसंग चल रहा था। महाराज ध्यानमग्न होकर सुन रहे थे। पूर्णविराम का दोहा आने पर महाराज ने मुझे रुकने के लिए कहा। उन्होंने हमें बहुत उपदेश दिये। दीवान साहब को प्रत्येक एकादशी को महावीर हनुमान की पूजा और श्रीरामनाम संकीर्तन करने के लिए कहा। गृहस्वामी ने महाराज के भोजन की व्यवस्था की थी। उस पंगत के लिए अनेक राजकर्मचारी उपस्थित थे। जाति-भेद के विषय पर चर्चा होने पर महाराज ने कहा, 'हम संन्यासी हैं। अत: हम देश, काल, पात्र की मर्यादा के परे हैं। हमारा रामकृष्णमय जीवन सबके लिये है। ठाकुर ब्राह्मण थे, इसीलिए हम उनके पास नहीं गये थे। वरन् उनका त्याग, योग, उनकी साधना, जाति-भेदातीत उनकी व्यवस्था, उनकी ईश्वरलीनता देखकर हम उनके पास गये थे। .... इस कलियुग में रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द पतितों के कल्याण के लिए आये थे।'' उन्होंने फिर एक निम्न जाति के युवक को प्रथम मिठाई देने के लिए कहा। उसके ग्रहण करने के बाद प्रसाद के रूप में वह मिठाई सबको देने के लिए कहा। वह एक अपूर्व दृश्य था !

श्रीरामकृष्ण देव के उत्सव के उपलक्ष्य में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया था। सभा के अध्यक्ष राज्य के प्रधान अमात्य थे। सभा में अन्य गणमान्य अतिथियों के व्याख्यान हुए। लोग स्वामी प्रेमानन्द जी के मुख से श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के विषय में सुनने के लिए उत्सुक थे। महाराज को आशीर्वचन देने के लिए प्रार्थना की गयी। महाराज ने खड़े होकर कहा, ''आप सभी प्रकाण्ड विद्वान हैं। हम आपके सेवक हैं। स्वामी विवेकानन्द हम सभी में श्रुतिधर थे। उन्हें सारा विश्व जानता है। जनता के कल्याण लिए वे सब कुछ बताकर गए हैं। अब हमें उनके अनुसार केवल कार्य करना चाहिए। फिर भी लोगों के आग्रह को देखकर हम गृहस्थ-धर्म तथा ऋषिमुनियों द्वारा कथित सर्वश्रेष्ठ ज्ञान की बातें बताते हैं। इस व्याख्यान में उन्होंने नारद मुनि की एक कथा को उद्धृत किया। भगवान विष्णु ने नारदजी को तेल से भरा हुआ पात्र लेकर पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने के लिए कहा। किन्तु पात्र से तेल की एक भी बूँद पृथ्वी पर न गिरने की शर्त थी। नारदजी ने शर्त के अनुसार प्रदक्षिणा पूर्ण की। भगवान का नाम न ले सके। भक्तों को सजगता और श्रद्धा के साथ भगवन्नाम लेना चाहिए। अहंकार न होना चाहिए।'' इस प्रकार महाराज का व्याख्यान सुनने में सभी मग्न हो गये। सर्वत्र उत्साह का वातावरण था।

कार्यक्रम के उपरान्त स्वामी प्रेमानन्द जी ने महिषादल स्थित दर्शनीय स्थलों को देखने की इच्छा प्रकट की। राजा के गढ़ पर श्रीकृष्ण का सुन्दर मन्दिर था। सब लोग वहाँ जाने के लिए निकले। ब्राह्मण ने मन्दिर में जाने के लिये महाराज को छोड़कर अन्य सबको राजमार्ग से जाने के लिये मना किया। महाराज साधारण जनता के दूरस्थ मार्ग से दर्शन

करने के लिये उद्यत हुए। तब उस ब्राह्मण ने देखा कि महाराज का शरीर अग्नि के समान देदीप्यमान है। भगवान श्रीकृष्ण मन्दिर से आकर महाराज के शरीर में प्रविष्ट हुए हैं। ब्राह्मण का इस दृश्य पर विश्वास नहीं हो रहा था। वह आँखें मलने लगा। किन्तु उसने देखा कि महाराज की देह में भगवान श्रीकृष्ण की ज्योतिर्मय नीलकान्ति विराजमान है तथा निरालाजी का शरीर महाराज के शरीर के साथ ज्योतिर्मय रज्जु से बँधा है। वातावरण एक अवर्णनीय आनन्द से पूर्ण है। ब्राह्मण यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया। वह दौड़कर राजा के पास गया। राजा भी ब्राह्मण से इस घटना का वर्णन सुनकर विस्मित हो गए। फिर भी राजा ने केवल महाराज को राजमार्ग से ले जाने का आदेश देकर ब्राह्मण को वापस भेज दिया। महाराज ने ब्राह्मण से कहा, 'हम जन-साधारण के हैं, हम सबके साथ दूर के रास्ते से जायेंगे, इसी में हमें आनन्द है।' वे सब के साथ दूरस्थ मार्ग से श्रीकृष्ण मन्दिर गये।

स्वामी प्रेमानन्दजी के महिषादल-भेंट की निराला के हृदय पर अमिट छाप पड़ी। महाराज के लौटने के बाद भी निरालाजी को मानस-पटल पर स्वामी प्रेमानन्द जी की मूर्ति का सदैव दर्शन होता था। महिषादल के एक सज्जन श्यामा प्रसाद मुखोपाध्याय ठाकुर के भक्त थे। निरालाजी की उनके साथ मैत्री हुई। बीच-बीच में वे उनके घर जाकर वेदान्त चर्चा करते थे। निरालाजी ने मुखोपाध्यायजी से ठाकुर और स्वामीजी के साहित्य-ग्रन्थ लेकर उनका अध्ययन किया। इस प्रकार वे श्रीरामकृष्ण भावधारा के सम्पर्क में आए। वे बीच-बीच में श्रीरामकृष्ण के जन्मोत्सव के लिए बेलूड़-मठ जाने लगे। १९२१ में अद्वैत आश्रम ने कलकत्ता से 'समन्वय' नामक हिन्दी मासिक आरम्भ किया। निरालाजी उस मासिक के सम्पादकीय विभाग में कार्य करने लगे। उस समय वे कलकत्ता के उद्बोधन कार्यालय में रहते थे। वहीं उनका स्वामी सारदानन्द जी से परिचय हुआ। 'स्वामी सारदानन्द और मैं' नामक लेख में उन्होंने उसका सुन्दर वर्णन किया है, जिसका यथावत् विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं –

''उन दिनों १९२१ ई. थी। एक साधारण से विवाद पर विशद महिषादल-राज्य की नौकरी नामंजूर-इस्तीफे पर भी छोड़कर मैं देहात के अपने घर में रहता था। कभी-कभी आचार्य पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के दर्शनों के लिये जूही अथवा कानपुर जाया करता था। इससे पहले भी, जब १९१९ में हिन्दी और बंगला के व्याकरण पर लिखा हुआ मेरा लेख शुद्ध कर 'सरस्वती' में छापकर १९२० में उन्होंने साहित्य सेवा से अवकाश ग्रहण किया, दौलतपुर में उनके दर्शन कर चुका था। साहित्य में द्विवेदीजी का गुरुत्व मैं उन्हीं के गुरुत्व के कारण मानता था (मानता भी हूँ), अपने किसी अर्थ-निष्कर्ष या स्वार्थ-लघुत्व के लिये नहीं। पर इष्ट तो निर्भर भक्त की भक्ति की ओर देखता ही है – द्विवेदीजी भी मेरी स्वतन्त्रता से पैदा हुई आर्थिक परतन्त्रता पर विचार करने लगे। आज ही की तरह उन दिनों भी हिन्दी की मसजिदों पर मुरीद द्विवेदीजी नमाज पढ़ते थे, लिहाजा उनकी कोशिश – मैं किसी अखबार के दफ्तर में जगह पा जाऊँ – कारगर हुई। दो पत्र उन्होंने अपनी आज्ञा से चिह्नित कर गाँव के पते पर मेरे पास भेज दिये, एक काशी के प्रसिद्ध रईस राजनीतिक नेता का था, एक कानपुर ही का। काशीवाले में आने-जाने का खर्च देने के विवरण के साथ योग्यता की जाँच के बाद जगह देने की बात थी, कानपुर वाले में लिखा था – ''इस समय एक जगह २५/- रुपये की है, अगर वह चाहें, तो आ जायँ।'' मालूम हो कि यह सब उदारता पूज्य द्विवेदीजी अपनी तरफ से स्नेहवश कर रहे थे। अवश्य मेरे पास शिक्षा का जो प्रमाण-पत्र इस समय तक है, इस योग्यता की पूरी-पूरी रक्षा जगह देनेवालों ने की थी, तथापि सिपहगरी के समतल क्षेत्र से सूबेदारी तक के सुस्तर उन्नति-क्रम पर अविचल श्रद्धा न मुझे पहले थी, न अब भी है। फलत: उन पत्रों को मेरी अशिक्षा के कारण स्थान-प्राप्ति हुई, मेरी जेब में प्रमाण के तौर पर अपने सुलेखकों के पास वापस जाने का सौभाग्य उन्हें न मिला। मेरे अन्दर मर्यादा का ज्ञान अत्यन्त प्रबल है, इसकी जानकारी पूज्य द्विवेदीजी को स्वत: उत्तरदायी पद दिलाने की ओर फेरने लगी। पर द्विवेदीजी करते भी क्या, प्रमाण जो न था। जो कुछ भी साहित्य-सेवा की प्रबल प्रेरणा से मैं लिखता था, वह एक ही सप्ताह के अन्दर सम्पादक महोदय की अस्वीकृति के साथ मुझे पुन: प्राप्त हो जाता था। केवल दो लेख और शायद दो कविताएँ तब तक छप पायी थीं, सो भी जब हिन्दी के छन्दों में बड़ी रगड़ की और लेखों में कलम की पूरी ऊँची आवाज से हिन्दी की प्रशंसा। अस्तु, इन्हीं दिनों स्वामी माधवानन्दजी, प्रेसिडेण्ट अद्वैत आश्रम (रामकृष्ण-मिशन), मायावती, अलमोड़ा, हिन्दी में एक पत्र निकालने के विचार से पत्रों में विज्ञापन करते हुए सम्पादक की तलाश में द्विवेदीजी के पास जूही आये।

उस समय मेरी एक कविता, 'परिमल' में 'अध्यात्म-फल' के नाम से छपी है, 'प्रभा' में प्रकाशित हुई थी। उतने ही प्रत्यक्ष आधार पर आचार्य द्विवेदीजी स्वामीजी के पत्र के लिये मेरी योग्यता की सिफारिश कर चले। उनकी तकलीफ आप समझ सकते हैं। स्वामीजी ने मेरा पता नोट कर लिया, और मुझे एक चिट्ठी योग्यता के प्रमाण-पत्र भेजने की आज्ञा देते हुए लिखी। बंगाल में रहकर परमहंस श्रीरामकृष्ण देव तथा स्वामी विवेकानन्दजी के साहित्य से मैं परिचय प्राप्त कर चुका था, दो-एक-बार श्रीरामकृष्ण मिशन, बेलूड़, दरिद्र नारायणों की सेवा के लिये भी जा चुका था, श्रीपरमहंसदेव के शिष्य श्रेष्ठ पूज्यपाद स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज को महिषादल में अपना तुलसीकृत रामायण का सस्वर पाठ सुनाकर उनका अनुपम स्नेह तथा आशीर्वाद प्राप्त कर चुका था, स्वामी माधवानन्दजी को पत्रोत्तर में अपनी इसी योग्यता के हृष्ट-पुष्ट प्रमाण दिये। स्वामीजी का वह पत्र अँग्रेजी में था और मेरा उत्तर बंगला में। कुछ दिनों बाद द्विवेदीजी के दर्शनों के लिए फिर गया तो मालूम हुआ कलकत्ता में एक सुयोग्य साहित्यिक स्वामीजी को सम्पादन के लिये स्वयं प्राप्त हो गये हैं। घर लौटने पर उनका एक पत्र मुझे भी बंगला में लिखा हुआ मिला कि धैर्य धारण करो, प्रभु की इच्छा होगी, तो आगे देखा जायेगा।

''इसी समय महिषादल-राज्य से मुझे तार मिला कि जल्द चले आओ। मैंने सोचा, जब नामंजूर इस्तीफे पर हठवश चले आने का दोष ही हटा दिया गया, तो अब जाने में दुविधा क्यों करूँ? मैं महिषादल गया। पर राजा, जोगी, अग्नि, जल की उलटी रीतिवाली याद न रही। यहाँ 'समन्वय' के सार्थक नाम से एक सुन्दर पत्र प्रकाशित हुआ। मेरे पास भी वह लेख के तकाजे के साथ गया। मैंने उसमें 'युगावतार भगवान् श्रीरामकृष्ण' ऐसा एक लेख लिखा। जब वह प्रकाशित हुआ, तब मैंने द्विवेदीजी की राय माँगी। उन्होंने उस लेख को पढ़कर बधाई दी। मैं मौलिक लेख लिख सकता हूँ, आचार्य द्विवेदीजी के इस आशीर्वाद का सदुपयोग मैं अपने ही भीतर तब से अब तक करता जा रहा हूँ। कई और भी मेरे साहित्यिक पूज्यपादों ने इस लेख की विचारणा और भाषा-शैली के लिए मुझे प्रोत्साहन दिया। 'समन्वय' को एक बड़ी अड़चन पड़ी और यह हिन्दी और बंगला बोलनेवालों में, मेरे विचार से, शायद अभी बहुत दिनों तक रहेगी। इधर मेरे सामने भी राजावाली उलटी रीति पेश हुई। इसी समय 'समन्वय' के मैनेजर स्वामी आत्मबोधानन्द जी ने मुझे लिखा कि बंगालियों के भावों को समझने के लिये यहाँ ऐसा आदमी चाहिए, जो बंगला जानता हो। हमें अड़चन पड़ती है, तुम चले आओ। मैंने जाकर देखा, 'समन्वय' के आठ ही महीने में दो सम्पादक बदल चुके थे। सम्पादक की जगह नाम स्वामी माधवानन्द जी का छपता था, वह हिन्दी भी बहुत अच्छी जानते थे, काम तथा हिन्दी की विशेषता की रक्षा के लिए 'समन्वय में एक हिन्दी-भाषी सम्पादक रहता था। इस तरह मैं 'समन्वय' में जाकर स्वामीजी महाराज के साथ, 'उद्बोधन' कार्यालय, बागबाजार में रहने लगा। यहीं पहले पहल आचार्य स्वामी सारदानन्दजी महाराज के दर्शन किये। यह १९२२ ई. की बात है।

''स्वामी सारदानन्दजी इतने स्थूल थे कि उन्हें देखकर डर लगता था। यद्यपि डरवाली बात मेरे पास बहुत पहले ही से कम थी, भूतों से साक्षात्कार करने के लिए रात-दिन-भर श्मशानों की सैर करता रहता था, और आधी रात को घर से निकलकर पैदल आठ-नौ कोस जमीन चलकर सुबह आचार्य द्विवेदीजी के दर्शन किये थे, फिर भी स्वामी सारदानन्दजी की ओर बहुत दिनों तक मैं देख नहीं सका। पर मैं आँखें झुकाकर, प्रणाम कर उनकी सभा में कभी-कभी बैठ जाता था – बातचीत सुनने के लिए। किसी दर्शन या धर्मग्रन्थ का पाठ होने पर उठकर चला आता था, क्योंकि दार्शनिकता की मात्रा यों भी दिमाग में बहुत ज्यादा थी, जी घबरा उठता था। स्वामीजी की वार्तालाप-सभा में महीनों मैंने संयम रक्खा, कुछ बोल कर बेवकूफ न बनूँगा, सिद्धान्त कर लिया था। बाहर के आये हुए विद्वानों को देखता भी था, अण्ट-सण्ट बकते जा रहे हैं, न सिर, न पूँछ, उनकी आवाज की किरकिराहट अर्थ से पहले अनर्थ व्यंजित करती थी। स्वामीजी मेरी 'यावत्किंचिन्नभाषते' नीति पर प्रसन्न होकर मुस्कराते थे। एक रोज धैर्य जाता रहा। मैंने पूछा, ''यह संसार मुझमें है, या मैं इस संसार मैं हूँ।'' उन्होंने बड़े स्नेह से कहा, ''इस तरह नहीं।''

''हमारे यहाँ की जैसी संस्कृति थी, मैं बचपन से सन्तों की सूक्तियों पर भक्ति करता हुआ विशेष रूप से ईश्वरानुरक्त हो चला था। इसलिये सो जाने पर देवताओं के स्वप्न बहुत देखता था। जो देव जाग्रत अवस्था में कभी नहीं बोले, मैं ही बातचीत करता थकता, वे सो जाने पर दम न भरते थे। इसे धर्म-ग्रन्थों में शुभ लक्षण कहा है। पर मेरे लिये यह

उत्तरोत्तर अशुभ हो चला। क्योंकि बराबर यह प्रश्न जारी रहा कि मूर्तियाँ जाग्रत अवस्था में क्यों नहीं बोलतीं? रात की अनिद्रा और दिन की उधेड़बुन के शुभ लक्षण सहज ही अनुमेय हैं। क्रमश: दार्शनिकता प्रबल हो चली। धीरे-धीरे देवताओं के कथोपकथन के फलस्वरूप घोर नास्तिक, शंकितचित्त हो गया। जब 'समन्वय' के सम्पादन के लिये गया था, तब यही दशा थी। आस्तिकता पहले के उपार्जित संस्कार या धूप-छाँह की सार्थकता की तरह आती थी। एक दिन मैंने स्वामीजी से कहा, 'सो जाने पर मेरे साथ देवता बातचीत करते हैं।'' वह सस्नेह हँसकर बोले, 'बाबूराम महाराज से भी करते थे।'' (स्वामी प्रेमानन्दजी का संन्यास से पहले श्रीबाबूराम नाम था। इनका जिक्र मैं कर चुका हूँ कि श्रीरामकृष्ण के शिष्यों में पहले इन्हीं के दर्शन मैंने महिषादल में किये थे)। इस प्रसंग के कुछ ही दिनों में मैं अपने एक बंगाली मित्र के बिस्तरे पर सो रहा था, दुपहर को सोने का मुझे अब भी अभ्यास है, देखता हूँ कि स्वामी सारदानन्द जी महाध्यान में मग्न हैं, ईश्वरीय विभूति से युक्त ऐसी मूर्ति मैंने आज तक नहीं देखी – कमलासन पर बैठे हुए ऊर्ध्वबाहु, मुद्रितनेत्र, मुख-मण्डल पर महानन्द की दिव्य ज्योति, जो कुछ है, सब ऊपर उठा जा रहा है, इसी समय उनके सेवक एक संन्यासी महाराज उन्हें खिलाने के लिये रसगुल्ले ले गये, उसी ध्यानावस्थित अवस्था में स्वामीजी ने मेरी ओर इशारा किया। सेवक महाराज ने लौटकर मुझे रसगुल्लों का कटोरा दे दिया। मैं गया और एक रसगुल्ला खिलाकर लौट आया। कटोरा सेवक संन्यासी महाराज को दे दिया।

''बस, आँखें खुल गयी। मेरा मस्तिष्क हिम-शीकरों-सा स्निग्ध हो गया। उसमें महाज्ञान का कितना बड़ा प्रत्यक्ष प्रमाण मैंने देखा है, मैं क्या कहूँ।

''पर मेरी विरोधी शक्ति बराबर प्रबल रही। तीव्र तीक्ष्ण दार्शनिक वज्र-प्रहारों से बराबर मैं मन से उनका अस्तित्व मिटाता रहा – मिटा देता था, तभी काम कर सकता था, पर वह काम – जो घर के लिए, संसार के लिये बन्धनों से मुक्त होनेवाला सामाजिक और साहित्यिक उत्तरदायित्व लिये हुए था। पर आकाश से सीमावकाश में आकर भी मैं आकाश में ही रहता हूँ, ज्यो-ज्यों लड़ता गया – जुदा होता गया, वह भाव प्रबल होता रहा। जीवन्मुक्त महापुरुष क्या है, मैं अब और अच्छी तरह समझने लगा। मैं प्रहार करता हुआ जब थक जाता था, तब मेरे मनस्तत्त्व के सत्य-स्वरूप स्वामी सारदानन्द जी मुझे रंगीन छाया की तरह ढककर हँसते हुए तर कर देते थे। इन महादार्शनिक, महाकवि, स्वयम्भू, मनस्वी, चिर ब्रह्मचारी, संन्यासी, महापण्डित, र्स्वस्वत्यागी, साक्षात् महावीर के समक्ष देवत्व, इन्द्रत्व और मुक्ति भी तुच्छ है। मैंने भी देश तथा प्रदेशों के बड़े-बड़े कवियों, दार्शनिकों, पण्डितों तथा पुरुषों के साथ एक सर्वश्रेष्ठ उपाधि से भूषित किये हुए अनेकानेक लोगों को देखा है, पर वाह रे संसार, सत्य की कितनी खरी जाँच तूने की – महाविद्या और महापुरुष-चरित्रों का कितने पोच मस्तिष्कों में तूने पता लगाया। मैं ब्राह्मण था, किसी मनुष्य को सिर नहीं झुकाया, मेरे चरित्र का पूरा अध्ययन कीजियेगा, चरित्र और ज्ञान, जीवन और परिसमाप्ति में जो 'एजति, न एजति' को सार्थक करनेवाले ब्रह्म थे, उन्होंने अपनी पूर्णता देकर मेरी स्वल्पता ले ली। अब दोनों भाव उन्हीं के हैं, एक से वह लड़ते हैं, दूसरे से बचते हैं – यही मेरा इस समय का जीवन है।

''स्वामी सारदानन्दजी के जिन सेवक संन्यासी के हाथ से कटोरा लेकर स्वप्न में मैंने स्वामीजी को रसगुल्ला खिलाया था, उन्होंने मुझसे एक रोज एकाएक कहा, 'तुम मन्त्र नहीं लोगे? – जाओ।'' मैंने सोचा, 'यहाँ महाप्रसाद की तरह मन्त्र भी बँटता होगा, लेने में हर्ज क्या है?' मुझे बड़े को गुरु मानने में आपत्ति कभी नहीं रही, रहा सिर्फ गुरुडम के खिलाफ, फिर मंत्र लेने से कुछ मिलता ही है, जहाँ मिलनेवाली रचना हो, वहाँ पैर न बढ़ाये, वह ब्राह्मण का कोई बेवकूफ लड़का ही होगा। मैं सपाटा-चाल सीढ़ी तय करके स्वामीजी के कमरे में पहुँचा और बैठ गया। उन्होंने पूछा, ''क्या है?'' मैंने कहा, ''मंत्र लेने आया हूँ।'' मेरे स्वर में न जाने क्या था। मुझे तन्त्र-मन्त्र पर बिल्कुल विश्वास न था। स्वामीजी प्रसन्न गम्भीरता से बोले, ''अच्छा, फिर कभी आना।''

''मैंने मन में कहा, अब इज्ञानिब (इस दिशा में) नहीं जाने का। कई रोज हो गये, नहीं गया। वहाँ कभी-कभी माँ के कमरे में (श्रीपरमहंसदेव की धर्मपत्नी श्री सारदामणि देवी, तब माँ देह छोड़ चुकी थीं) तुलसीकृत रामायण पढ़ता था। पहले दिन पढ़ी थी, तब स्वामी सारदानन्दजी ने प्रसाद के दो रसगुल्ले दिलाये थे। सबको एक रसगुल्ला मिलता है। केवल शंकर महाराज (स्वामी सारदानन्द जी के बड़े गुरुभाई, श्रीरामकृष्ण मिशन के प्रथम प्रेसीडेंट, पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्द जी के प्रिय शिष्य) को दो रसगुल्ले पाते

हुए बाद में मैंने देखा था, पर उन्होंने एक रसगुल्ला मुझे दे दिया था। एक बार माँ को प्रणाम कर, प्रसाद लेकर मैं स्वामी सारदानन्द जी महाराज के जीने की तरफ से उतरने के लिये जा रहा था, प्रसाद मेरे हाथ में था, मन बड़ा प्रफुल्ल, फूल-सा खिला हुआ, हल्का, गोस्वामी तुलसीदास जी की भारतीय संस्कृति मन को ढके हुए। स्वामीजी आ रहे थे, मुझे भावावेश में देखकर, रास्ता छोड़कर एक तरफ हट गये, मुझे होश था ही, मैं भी हटकर खड़ा हो गया कि यह चले जायँ, तो जाऊँ। स्वामीजी ने पूछा, 'यह प्रसाद किसके लिये ले जा रहे हो?'' (स्वामीजी से मेरी बंगला में बातचीत होती थी) मैंने कहा, ''अपने लिये।'' उन्होंने कहा, ''अच्छा, खाकर आओ।'' चटपट प्रसाद खाकर मैं ऊपर गया। स्वामीजी अपने कमरे के सामने उसी रास्ते पर खड़े थे। मुझे देखकर बड़े स्नेह से पूछा, ''उस रोज तुम क्या कहने वाले थे?'' मैंने कहा, 'मुझे तन्त्र-मन्त्र पर विश्वास नहीं।'' उन्होंने पूछा, ''तुम गुरुमुख हो?'' मैंने कहा, ''हाँ, पर तब मैं नौ साल का था!'' उन्होंने कहा, ''हम लोग तो श्रीरामकृष्ण को ही ईश मानते हैं।'' मैंने कहा, 'ऐसा तो मैं भी मानता हूँ।'' उत्तर की मैंने कभी देर नहीं की, वह ठीक हो या गलत। पहले क्या कह गया हूँ, फिर क्या कह रहा हूँ, इसकी तरफ ध्यान देनेवाला सच्चा वक्ता लेखक, कवि या दार्शनिक नहीं – वह कला की मुक्ति में गण्य नहीं, कलाकारों के ऐसे कथन का मैं सजीव उदाहरण था। स्वामीजी के भारतीय कान ऐसे न थे, जो अँग्रेजी बाजे के विवादों से भड़ककर उसे संगीत स्वीकार ही न करते। वह भावस्थ गुरुत्व से मेरे सामने आये। मुझे ऐसा जान पड़ा, एक ठण्डी छाहँ में मैं डूबता जा रहा हूँ। फिर मेरे गले में अपनी उंगली से एक बीजमन्त्र लिखने लगे। मैंने मन को गले के पास ले जाकर क्या लिख रहे हैं, पढ़ने की बड़ी चेष्टा की, पर कुछ मेरी समझ में न आया।
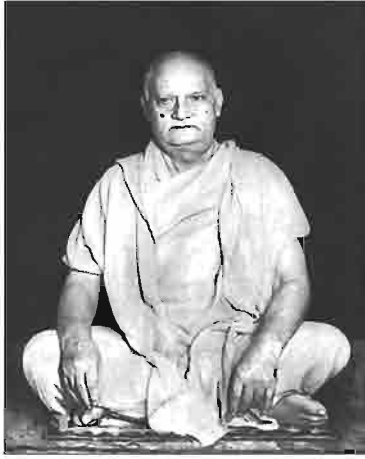
स्वामी शंकरानन्द

परोक्ष रीति से ध्यान-धारणा के लिये स्वामीजी मुझे कभी-कभी याद दिला देते थे, पर मुझे यह धुन थी कि अब देखना है, गलेवाला मन्त्र क्या गुल खिलाता है। पूजा-पाठ जो कुछ कभी-कभी करता था, वह भी बन्द कर दिया। मुझे कुछ ही दिनों में जान पड़ने लगा, मेरा निचला हिस्सा ऊपर और ऊपरवाला नीचे हो गया है, और रामकृष्ण मिशन के साधु मुझे खींच रहे हैं। अजीब घबराहट हुई। मैंने सोचा इन साधुओं ने मुझ पर वशीकरण किया। तब 'समन्वय' के कार्यकर्त्ता 'उद्‌बोधन' छोड़कर 'मतवाला' आफिस में (तब 'मतवाला' न निकलता था, बालकृष्ण प्रेस था, मालिक 'मतवाला' के सम्पादक बाबू महादेवप्रसादजी सेठ थे) किराये के कमरों में रहते थे। मैं भी उनके साथ अलग कमरे में रहता था। महादेव बाबू से मैंने कहा, ''ये साधु लोग मुझे जादूगर जान पड़ते हैं।'' महादेव बाबू गम्भीर होकर बोले, ''यह आपका भ्रम है।'' मैंने कुछ न कहा, पर मुझे भ्रम होता, तो विश्वास भी होता। एक रोज ऐसा हुआ कि उन्हीं साधुओं में से एक की मेरे पास आकर यही हालत हुई। यह दर्शन-शास्त्र के एम.ए. हैं। आजकल अमेरिका में प्रचार कर रहे हैं। जब खिंचने लगे, तो बोले, ''पण्डितजी, क्या आप वशीकरण जानते हैं? मैंने मन में कहा, 'हूँ!' खुलकर बोला, ''मैं मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन सब में सिद्ध हूँ।''

इसके बाद एक दिन स्वप्न देखा – ज्योतिर्मय समुद्र है, श्यामा की बाँह पर मेरा मस्तक, मैं लहरों में हिल रहा हूँ।

फिर इतने चमत्कार इधर दस वर्षों में देखे कि अब बड़े-बड़े कवियों तथा दार्शनिकों की चमत्कारोक्तियाँ पढ़कर हँसी आती है। वह मन्त्र भी तीन साल हुए आग-सा चमकता हुआ कुछ दिनों तक सामने आया, उसे मैंने पढ़ लिया है। *('सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, १६ नवम्बर, १९९३। पहले सखी में, फिर चतुरी चमार में प्रकाशित।* **(क्रमशः)**

मन स्वभावतः बुराई की ओर उन्मुख होता है; वह सत्कर्मों की ओर प्रवृत्त नहीं होता। दक्षिणेश्वर में मैं जल्दी उठकर ध्यान किया करती थी। उस समय मैं तीन वजे रात को उठ जाती थी। एक दिन तबियत कुछ अच्छी न रहने से आलस्य करके मैं जरा देर से उठी। धीरे-धीरे मैंने देखा कि सबेरे उठने की फिर इच्छा ही नहीं होती थी। तब सोचा, अरे, यह तो मैं आलस्य के फन्दे में पड़ गयी! उसके बाद मैं जोर देकर उठने लगी। तब फिर से सब धीरे-धीरे पहले के समान हो गया। इन सब बातों में बड़ी दृढ़ता से अभ्यास में लगे रहना पड़ता है। – श्री सारदा देवी
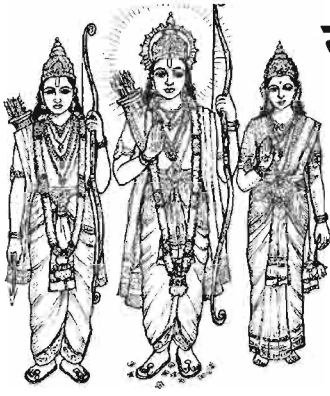
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (८/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

अगर देनेवाले के मन में यह बात आ गई कि लेनेवाला छोटा है, तो उसने बहुत खो दिया। जब वामन भगवान आते हैं, तो बलि ने कहा, आप जो माँगेंगे मैं दूँगा। भगवान मुस्कराए और यही कहा कि तीन पग भूमि मुझे चाहिए। हँसने लगा बलि। ब्रह्मचारी, तुम्हें देखकर तो लगा कि तुम बड़े महान हो, बुद्धिमान हो, पर तुम्हारी माँग सुनकर तो लगता है कि तुम्हारे शरीर की तरह तुम्हारी बुद्धि भी छोटी है। तभी तो तुम मुझ जैसे दानी के पास आकर तीन पग भूमि माँग रहो हो, पर भगवान की जो सांकेतिक भाषा थी, वह तो बलि नहीं समझ पाए। तीन पग माने? संसार में तो व्यक्ति के दो पग हैं। जो आपका होगा, वही तो आप दे सकते हैं। भगवान का व्यंग्य कि तीन पग और वह सोचने लगा कि इसमें क्या रखा है, कौन-सी बड़ी बात है? पर संकेत यह है कि भई, प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में दो ही पग हैं, और दान भी आप देंगे, तो दो ही पग देंगे, या तो अर्थ दे सकते हैं या काम दे सकते हैं। भोग की सामग्री देंगे या द्रव्य देंगे, दो ही दान देंगे। बहुत हुआ तो ढाई कर लीजिए, दान धर्म है तो आपने वह भी कर लिया। पर भगवान ने जब नापना प्रारम्भ किया और वामन से विराट बने और भगवान का चरण जब ब्रह्मलोक में गया, तो उसको देखते ही ब्रह्मा गदगद् हो गये। कमण्डल में जल लेकर भगवान के चरणों को उन्होंने धो लिया। किसी ने ब्रह्मा से पूछा, भगवान तो यह लीला बलि के लिए कर रहे हैं, आप क्यों चरण धो रहे हैं। तब उस ब्रह्मा की वही दृष्टि हुई, जो होनी चाहिए। ब्रह्मा ने कहा, नहीं-नहीं, भगवान इतने विराट तो मेरे लिए बने हैं, दूसरे के लिए नहीं। भक्ति की गंगा कब प्रगट हुई? जब लगने लगे कि अरे, मैंने क्या किया है ऐसा? कौन-सी ऐसी साधना की है? क्या दिया है? व्यक्ति के हृदय में जिस समय यह भावना उदित होगी, उस समय वह भगवान के चरण का नख प्रच्क्षालन करेगा, तो भक्ति की गंगा उसके हृदय में प्रगट होगी। अगर किसी बड़े-से-बड़े महापुरुष संतपुरुष ने यह कहा कि मुझमें कुछ विशेषता नहीं है, मुझमें कोई साधना नहीं है, तो कुछ लोग यह समझते हैं कि यह उनकी विनम्रता है। भई, मन में न हो और ऊपर से कहा जाय, तो यह नम्रता नहीं, यह दम्भ है। अन्तर समझना चाहिए, कोई समझे हम तो बहुत अच्छे हैं, पर ऊपर से कहे कि मैं तो बड़ा पापी हूँ, तो नम्रता थोड़े ही है, यह तो दम्भ है। जब भगवान की महिमा पर दृष्टि जायेगी, असीम काल, असीम देश का अनुभव होगा, तो यह वर्णन आयेगा –

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड। १/२०१/०

यही तो आता है। कौशल्या अम्बा नित्य पूजा करती हैं। नित्य पूजा करते-करते भगवान ने एक दिन निर्णय किया कि आज तो माँ को पूजा का फल देना चाहिए। देखिए, पूजा क्या करते हैं आप? पूजा में तो हम लोगों का क्या कहना! जो लोग भवन में पूजा-स्थल रखते हैं, वे तो अच्छा ही करते हैं। पर अधिकांश लोग तो पूजा-स्थल भी ऐसे कोने में रखेंगे कि जो स्थान बिल्कुल किसी काम का न हो, वहीं भगवान को बिठाएँगे। पर भगवान तो उदार ही हैं, वहाँ कोने में भी बैठ जाते हैं। अरे उसकी बात क्या कहते हैं! आप लंका में गये, तो वहाँ तीन शिखर हैं। भगवान ने देखा कि मैं बैठूँ कहाँ? लंका के तीन शिखरों में एक पर तो लंका का राज्य है और दूसरे पर लंका की नृत्यशाला है। भगवान ने देखा कि एक ही शिखर बाकी है, चलो भाई, यहीं बैठ जायँ। तिहाई भाग में ही सही। वे वहाँ पर भी बैठ जाते हैं। हममें से जो लोग नित्य-पूजा करते हैं, भगवान को भोग लगाते हैं, तो चाहते हैं कि लोग देखें कि हम कितना भोग लगा रहे हैं! कैसी पूजा कर रहे हैं! अब आप

ही सोचिए, क्या ऐसा करना चाहिए? पूजा करनी चाहिए, भगवान का भजन करना चाहिए, साधना करनी चाहिए, पर यह समझने की भूल न कर बैठें कि हमने भगवान को कोई वस्तु दी है।

पूजा का फल वह था। लिखा हुआ है कि कौशल्या अम्बा ने सोचा कि पूजन करना है और उनको लगा कि यह बालक तो बाधक है। जबकि साक्षात् भगवान बालक के रूप में क्रीड़ा कर रहे हैं। मैं पूजा करूँ और बालक कुछ कर दे, भगवान के भोग को ही जूठा कर दे, तब तो यह ठीक नहीं रहेगा। बालक तो चंचल होते ही हैं। इसको तो सुला देना चाहिए। उन्होंने पालने में राम को सुला दिया। सुला देने के बाद पूजा करने गईं। उन्होंने पूजा में दिव्य नैवेद्य अनेक सुन्दर से सुन्दर थालों में सजाकर भगवान की प्रतिमा के सामने अर्पित कर दिया और परदा खींच दिया। साधारणतया ऐसी परम्परा है और प्रतीक्षा कर रही थीं, सोच रही थीं कि भगवान नैवेद्य ग्रहण कर रहे हैं। कुछ देर बाद यह मानकर कि अब तो भगवान भोग ग्रहण कर चुके होंगे, उन्होंने जैसे ही परदा उठाया, तो वह बालक, जिसे वे सुला आई थीं, वह वहाँ भोग लगा रहा है। आश्चर्य हुआ, यह बालक यहाँ कैसे? यह भगवान का नैवेद्य है, यह तो बड़ा अनर्थ हो गया! भगवान के लिये, इष्ट देव के लिये जो नैवेद्य मैंने रखा, उसे बच्चे ने जूठा कर दिया, कितने रूष्ट हो जाएँगे इष्ट देवता। पर सोचने लगीं, अभी तो मेरा नन्हा बच्चा चलने योग्य भी नहीं हुआ है। वह पालने से उतरा कैसे होगा! आया कैसे होगा! फिर मैंने कैसे नहीं देखा! कहीं ऐसा तो नहीं कि मैंने आँखें बंद किये और इसी बीच वह आ गया हो! बड़े असमंजस में पड़कर जब उन्होंने जाकर पालने में देखा, तो आश्चर्यचकित हो गईं –

देखा बाल तहाँ पुनि सूता।

उन्होंने देखा कि बालक सो रहा है। फिर वहाँ से पूजा-कक्ष में आईं, तो देखा कि बालक यहाँ भोग लगा रहा है। तब लिखा हुआ है –

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा।
मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा।। १/२००/७

मेरी बुद्धि में ही कोई भ्रम हो गया है क्या? सचमुच, यह क्या हो रहा है? गोस्वामीजी ने संकेत किया –

देखि राम जननी अकुलानी।
प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी।। १/२००/८

भगवान मन्द-मन्द मुसकाते हैं। संसार के जितने भक्त साधक हैं, उनकी साधना को देखकर भगवान के होठों पर मुसकान यदि आ जाय, हँसी आ जाय, तब क्या? मान लीजिए, आप प्राणायाम करने बैठें और आप के बगल में पाँच वर्ष का बालक आपको नाक पर अँगुली रखे देखकर वह भी वैसा ही नाक पर अँगुली रखकर आपका नकल करने लगे। बच्चों का तो स्वाभाव नकल करने का होता है। वह बेचारा प्राणायाम तो जानता नहीं है कि कैसे साँस चढ़ाया जाता है, कैसे रोका जाता है, वह तो केवल नकल कर रहा है। कहीं आपकी आँखें खुल जाय, तो आपको हँसी आए बिना नहीं रहेगी। कहेंगे कि वाह, अच्छी नकल कर लेता है। इसी प्रकार ये जितने साधक हैं, इनकी साधना को देखकर भगवान हँस पड़ते होंगे कि वाह, अच्छी नकल कर रहा है। अच्छा नाटक है। भगवान का मुस्कराना माने? उसमें हँसी है, आनन्द है। वे बच्चों का खेल देखकर, उसकी सत्यता को नहीं परखते, कार्य के महत्त्व को नहीं देखते, वह तो बाल-सुलभ चेष्टा है। यहाँ क्या हुआ?

देखि राम जननी अकुलानी।
प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी।।

और तब पूजा का फल क्या दिया?

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।। १/२०१/०

अचानक माँ के सामने वह दिव्य विराट रूप प्रगट हुआ, जिसके एक-एक रोम में करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्ड थे। कल्पना कीजिए उस विशालता की! इस ब्रह्माण्ड में पृथ्वी कितनी छोटी है और वह ब्रह्म जिसके एक-एक रोम में करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्ड हो, उसमें हमारी आपकी ये पूजा-साधना है क्या? वह तो कुछ है ही नहीं। भगवान यह बताना चाहते थे कि तुमने मुझे सोए हुए भी देखा, भोग लगाते हुए भी देखा और यह विराट रूप भी देखा। इन तीन रूपों में तुमने मुझे देखा। एक रूप में तो 'अद्भुत रूप अखण्ड' और दूसरी ओर भक्त भावना से सुलाता है, तो मैं सो जाता हूँ। उसके बाद कहा कि समस्या मेरे सामने यह थी कि तुमने सुला दिया, तो मैं कैसे नहीं करता,तो सो भी गया। ईश्वर सो सकता है क्या? ईश्वर का सोना तो

सोने का अभिनय ही वह करता है। नाटक ही करता है। कौशल्याजी ने सुलाया, तो सो गया और उन्होंने कहा कि माँ, जब तुमने भोग लगाया, तब मुझे यही लगा कि अब क्या कर सकते हैं! अगर तुम्हारे भोग को ग्रहण करते हैं, तो वह वस्तु की विशेषता से नहीं, वह तो 'राम भूखे भाय के' इसलिए करते हैं। तुम्हारी भावना थी, तो मैं भोग लगाने लगा। उसके बाद जब कौशल्याजी ने असीम का दर्शन कर लिया कि जिसके रोम-रोम में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं। गोस्वामीजी लिखते हैं –

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।।
अगनित रबि ससि सिव चतुरानन।
बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन।।
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ।
सोउ देखा जो सुना न काऊ।।
देखी माया सब बिधि गाढ़ी।
अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी।। १/२०१/१-३

ऐसा दिव्य दर्शन जब किया, तब वे स्तुति करने लगीं–

अस्तुति करि न जाइ भय माना।
जगत पिता मैं सुत करि जाना।। १/२०१/७

अरे, इनको मैंने अपना पुत्र मान लिया? वह जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड को धारण करनेवाला है, क्या वह मेरे गर्भ में आ सकता है? देख लिया, स्तुति कर लिया, तब भगवान ने कहा कि आपको तो मैंने दिखला दिया, पर एक बात का ध्यान रखिएगा। क्या? बोले –

यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई।

किसी को बताना मत। भगवान को लगा होगा कि अगर यह बता दिया जायेगा कि मैं अनन्त ही हूँ और मेरे सामने कोई वस्तु है ही नहीं, तो आलसी लोगों को अपने आलस्य के समर्थन के लिए बहाना मिल जायेगा कि चलो, पूजा और भोग लगाने की क्या आवश्यकता है, वह तो अनन्त हैं। ऐसे वाक्यों को लोग बड़ी जल्दी पकड़ लेते हैं। यदि उन्हें गंगा स्नान के लिये नहीं जाना है, तो कहेंगे – 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। अब कठौती में गंगा तो मान लेंगे, पर मन चंगा की बात भुला देंगे। इसका अभिप्राय है कि भगवान कहते हैं, यह ठीक है, तुमने उस अखण्ड को देख लिया, पर जो लीला होगी, जो नाटक होगा, उसके प्रति क्या भाव होगा? इस सम्बन्ध में गोस्वामीजी ने लिखा –

यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई।

माँ, जो तुमने दर्शन किया, इसे किसी को मत बताना। कौशल्याजी ने कहा, तुम भी मेरी एक बात का ध्यान रखना –

अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि। १/२०२/०

यह तुम्हारी माया हमें चक्कर में, फिर कभी भ्रम में न डाले। प्रभु मुस्कराए और उसके बाद तो भगवान की लीला प्रारम्भ हो जाती है। इसका सीधा-सा तात्पर्य यह है कि जैसे नाटक में कोई व्यक्ति हरिश्चन्द्र बन जाए, शिवि बन जाय, दधीचि बन जाय, तो उसे यह मानने की भूल नहीं करनी चाहिए कि हम सचमुच यह हैं। इसी तरह से साधना की स्थिति में हम अपने को यह समझ लें कि यहाँ यह भी अभिनय का एक अंग है, यह वृत्ति है। जब कोई इस मापदण्ड से देखता है, तब उसे लगने लगता है – हम अपनी किस योग्यता पर, किस साधना पर, अपने किस गुण पर, किस जप-तप पर, किस ध्यान पर, गर्व कर सकते हैं! व्यक्ति को जब यह अनुभूति होती है, तब लगने लगता है कि नहीं, नहीं, जो कुछ होगा, वह केवल प्रभु की कृपा से ही होगा। बार-बार विनयपत्रिका में गोस्वामीजी कहते हैं –

जब कब निज करुना स्वभाव ते ...

चाहे कोई व्यक्ति मिश्री के एक टुकड़े का नैवेद्य लगावे, चाहे कोई छप्पन प्रकार के व्यंजन का भोग लगावे, बात भावना की है। भगवान श्रीकृष्ण तो यहाँ तक कह देते हैं –

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

राजा जनकजी हाथ जोड़कर बारात का सम्मान करते हुए कहते हैं –

सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल अंजलि दिएँ।
१/३२५/ छन्द-१

जब समुद्र को अंजलि देते हैं, अंजलि में भरकर जल देते हैं तो यह मानने की भूल नहीं करते हैं कि वह कोई हमारा जल है और उस जल से समुद्र में जल की वृद्धि हो जायेगी। अपितु उसके द्वारा हम अपनी भावना को प्रगट करते हैं। ***(क्रमशः)***

सन्त के लक्षण

श्री मुरारी बापू, प्रसिद्ध श्रीरामकथाकार

शान्त स्वभाव – जो व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में निरन्तर शान्त रहता है, वह साधु का पहला लक्षण है। कोई भी परिस्थिति हो, हमारी गंगासती गुजराती में बोली है – 'मेरी रे डगे, पण जेना मनड़ा न डगे, ...भाँगी पड़े ब्रह्माण्ड' – अर्थात ब्रह्माण्ड टूट जाय, पर मेरा मन विचलित न हो।

जो शान्त रहे। उसमें दो बातें हैं – सहज शान्त रहना और कुछ योजना बनाकर शान्त होने का दम्भ करना। कई लोग सहज शान्त होते हैं। उनका आकार ही शान्त रहना है। एक श्लोक हम विष्णु भगवान के बारे में बोलते रहते हैं –

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभांगम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ।।

जिसका आकार ही शान्त हो, जिसके रहने से एक प्रकार की शान्ति विराजती है। दूसरा, जो अपने आपको शान्त बनाने की दांभिक प्रयास करता है। आप कहेंगे कि हम कैसे पहचानें कि उसकी शान्ति दांभिक है या सहज है? इसकी भी पहचान हो जायेगी। छोटी-सी बात ध्यान में लें। जिसके पास जाने के बाद लौटते समय तुम में भी शान्ति का अनुभव हो, तो समझना कि वह साधु सहज शान्त है। जिसके पास हम गये, हमारा मन शान्त नहीं है, समझो वह बनावटी शान्त होकर बैठा है।

कुलीनता – सद्-वंश की कुलीनता साधु का लक्षण है। वैसे मैं किसी कुल को महत्त्व देना नहीं चाहता, लेकिन कुल काम करता है। जिस कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है, उसकी कुछ बातें तुम्हारी जीन्स में भी आती हैं। अरे! यदि माँ-बाप-दादा का रोग जीन्स में आता है, डायबिटीज बच्चे में भी आ जाता है, तो अच्छे लक्षण तो बहुत प्रभाव के साथ आते हैं।

सन्त वह है जिसमें कुलीनता है। आदमी का अच्छापन-बुरापन के भी कारण होते हैं। एक तो उसका कुल और दूसरा-उसका संग, उसकी संगति। ये उसके संस्कार और कुसंस्कार के दो कारण बनते हैं।

सौराष्ट्र के एक कुलीन किसान की घटना मैं आपको बताऊँ। सौराष्ट्र में एक जिला है – अमरेली। सड़क मार्ग में महुवा और राजकोट के बीच में पड़ता है। अमरेली के पास एक छोटा-सा गाँव है। वहाँ एक रामजी का मन्दिर बना। मुझे लोग आमंत्रित करने आये कि बापू, हमारे यहाँ रामजी का मन्दिर बना है, उसका उद्घाटन है। उसमें हमने नौ दिन की राम-कथा रखी है। हम सबकी इच्छा है कि आप एक घंटे के लिए रामकथा में आयें। हमें आनन्द होगा।

छोटे-से गाँव की माँग थी। मैंने कहा कि ठीक है, आऊँगा। मुझे लेने आये। तब इन लोगों ने जो बात बतायी, वह मुझे बड़ी प्यारी लगी। उन लोगों ने कहा, एक प्लाट था, उसमें थोड़ी जमीन कम थी। यदि मन्दिर के पीछे हमें दस-पन्द्रह फीट जमीन मिल जाती, तो दीवार बनाने में सुविधा होती। लेकिन मन्दिर के बिलकुल पीछे एक गरीब किसान का पाँच बीघा खेत था। हम सब उस किसान के पास गए और कहा – भाई, तेरी जमीन मन्दिर से सटी हुई है, तुम पाँच बीघा जमीन में से दस-पन्द्रह फीट अपनी सुविधा के अनुसार मन्दिर को दे दो। जो बाजार भाव होगा, वह कीमत हम तुम्हें दे देंगे। क्योंकि हम ऐसे नहीं लेना चाहते। भगवान की कृपा है, अच्छा फंड एकत्र हुआ है। सुन्दर मन्दिर बना है। तुम भी पूरा दाम ले लो। पाँच बीघा जमीनवाले गरीब किसान ने कहा, "रामजी के मन्दिर के लिये जमीन चाहिए, तो आपको जितनी चाहिए नापकर ले लो, मैं पैसा नहीं लूँगा।' यह है कुलीनता! खानदानी यह किसी एक वर्ग में हो, ऐसी कोई शर्त नहीं है। कभी दूर-दराज झोपड़े में बैठे हुए व्यक्ति में भी कुलीनता की सुगन्ध आती है।

आश्रमी निष्ठा – जिसमें आश्रमी निष्ठा हो। ब्रह्मचर्य आश्रम में हो, गृहस्थाश्रम में हो, वानप्रस्थ आश्रम में हो या संन्यास आश्रम में हो, किसी भी आश्रम में हो, लेकिन वह जिस आश्रम में है, उस आश्रम में जिसमें निष्ठा हो, जो उस आश्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाता हो, तो वह सन्त है।

अथवा मैं सरल रूप से कहूँ, जिसका जीवन ही हमें चलता-फिरता आश्रम लगे, वह चले तो लगे कि आश्रम जा रहा है, यह साधु का लक्षण है। वसीम बरेलवी साहब

का एक शेर है –

वो जहाँ भी जाएगा रोशनी फैलायेगा ।
चिरागों का अपना कोई मकां नहीं होता।।

दीये को कहीं भी ले जाओ, वह वहाँ प्रकाश करेगा। क्योंकि दीये का अपना मकान नहीं होता कि वहाँ प्रकाश दे। वह चलता-फिरता जगमग प्रकाश है।

ध्याननिष्ठ – जो ध्यानानिष्ठ हो। काम सबके साथ करेगा, बोलेगा सबके साथ, मिलेगा सबसे, लेकिन ध्यान में स्खलन नहीं होता। जैसे माला में कितने मनके होते हैं, पर सूत्र एक ही होता है। साधु ऐसे ही होता है। सबको लगे कि मेरा है, लेकिन अन्तरंग सूत्र से उसका ध्यान बना रहता है। ध्यान में स्खलन नहीं होता। उसको ध्यान करना नहीं पड़ता, स्वयं ध्यान हो जाता है।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।

वह ध्याननिष्ठ होता है। वह अकेला चुपचाप बैठा हो केवल तभी मत समझना कि वह ध्यान में है, बल्कि जब वह तुम्हारे साथ बातचीत करता हो, तब भी उसका ध्यान का सूत्र चालू है। उसका सुमिरन का सूत्र चालू है। बहुत कठिन है समझना। जिसकी ध्याननिष्ठा परिपक्व हो, उसको साधु समझना। कोई भी घटना या परिस्थिति उसका ध्यान भंग नहीं कर सकती।

सुवेश – जिसका वेश, वस्त्र सादा और सात्त्विक हो, वह सन्त का लक्षण है। यदि किसी का रजोगुणी वेश हो, तो मैं अनादर नहीं कर सकता। कई राजसी साधु भी हमारे यहाँ हुए हैं, जो बड़े ठाठबाट में जिये। सोना, चाँदी, हार, चाँदी-सोने में रुद्राक्ष के बड़े-बड़े मनके पहनते हैं। उसकी आलोचना नहीं करता, उसमें उसकी साधुता नहीं है, ऐसा निर्णय बिना जाने करना ठीक नहीं है। लेकिन वेश का भी कुछ प्रभाव है कि देखते ही आदमी को न लगे कि जरा रजोगुण दिखता है, सात्त्विकता नहीं है। प्रभावशाली वेश न हो। सुवेश हो। रामायण में साधु का एक परिचय लिखा है –

किएहुँ कुबेषु साधु सनमान्।
जिमि जग जामवंत हनुमान्।। (बा.का.-७/७)

जामवंत और हनुमानजी ने कौन-सा ऐसा वेश पहना था कि साधुता दिखे? कुवेश में भी कैसे हैं! –

लाल देह लाली लसे, अरु धरि लाल लंगूर।
बज्रदेह दानव दलन, जय जय जय कपि सूर।।
(श्रीसंकटमोचन-हनुमानाष्टक-दोहा)

कुवेश में भी साधुता प्रगट होती है।

साधु का एक परिचय है – सुवेश हो, सात्त्विक वेश हो। दूसरों पर प्रभाव डालने की कोई चेष्टा न हो। सहज, सीधा-सादा, सात्त्विक वेश हो ।

मैं फिर एक बात कहूँ, इसका कोई अन्यथा अर्थ न लें। कोई साधु-संत यदि ऐसे ठाठबाट से जीते हों, तो उनकी आलोचना नहीं है। वह उनकी रीति है। हम कैसे समझें? क्यों निर्णय करें कि ऐसा है? जल्दी निर्णय मत करना। लेकिन जनसाधारण लोगों के हृदय में श्रद्धा का उदय हो, जनसाधारण के दिल में भी साधुता की एक महक पहुँचे, ऐसा स्वभाविक सुवेश होना चाहिए। कोई योजनाबद्ध नहीं हो, स्वाभाविक सुवेश हो।

दोनों प्रकार के लोग होते हैं। ये जो कलाकार होते हैं, उनमें भी कई कलाकार बिलकुल सीधे-सादे वेश में होते हैं और कई कलाकार एकदम बहुत ठाठबाट में रहते हैं। इसमें जो ठाठ-बाट में रहते हैं, उनकी आलोचना नहीं है। वह उनकी मौज है।

निर्मल आँखें – सन्त की आँखें निर्मल होनी चाहिए। जब उनकी आँखों का दर्शन करो, तो लाख खोज-बीन करने पर भी कहीं वासना नजर न आये, भरपूर उपासना नजर आये, तो वह साधु है। सबसे बड़ी पहचान है साधुता की। हम और आप किसी महान व्यक्ति की अन्तरंग यात्रा उनकी आँखों के द्वारा कर सकते हैं। ये खिड़कियाँ हैं, जहाँ से प्रवेश होता है। आँखों की निर्मलता साधु का लक्षण है। सुनेत्र, सुनयन, यह संत का लक्षण है।

साधु का अन्तिम लक्षण। संत-लक्षण तो अनन्त हैं, लेकिन इक्कीसवीं सदी में हम और आप किसी बुद्धपुरुष को, किसी सद्गुरु को, किसी संतजन को आसानी से पहचान सकें, इसलिये कुछ बातें मैं आपके सामने रख रहा हूँ। अन्तिम लक्षण है।

मौन – आवश्यकता से अधिक जो बोले, वह साधु का लक्षण नहीं है। एक शब्द से काम हो जाए तो, दो न बोले। एक वाक्य से पूरा हो, तो दूसरा वाक्य न बोले और बोलने की बात आये, तो जरा भी कंजूसी न करे, पूरा बरस जाये।

मौन जिसका स्वभाव हो, वह साधु है। मुखरता उसका कभी-कभी कर्तव्य बन जाता है। स्वभाव नहीं होता। साधु का लक्षण है – मौन। चुप रहना। दिल्ली के शायर शेरबाजी का शेर है –

हजारों आफतों से वे बचे रहते हैं।

जो सुनते हैं ज्यादा और कम बोलते हैं।।

जो सुनते अधिक हैं और कम बोलते हैं, वे कई संकटों से बच जाते हैं। अधिक बोलने से बात बहुत बिगड़ती है। कई बार दो-पाँच व्यक्ति बैठे हों, उनमें एक व्यक्ति ऐसा आता है कि दूसरे की बारी ही नहीं आने देता। सारे विषय स्वयं ही उठा लेता है। हरेक विषय पर स्वयं ही बोलता है।

किसी कार्यक्रम में बोलना पड़े, तो हम बोलते हैं। कोई प्रवचन करे, कोई गाए, कोई कुछ प्रस्तुति करे, कोई साहित्य की बात हो, तब तो बोलना ही चाहिए। यहाँ कंजूसी कलाकार के लिये योग्य नहीं है। उस समय समाज के लिए अपने आपको पूरा उड़ेल देना चाहिए। लेकिन उसके बाद मौन हो जाय, यह साधु का लक्षण है। भगवान् शंकराचार्य की परम्परा में, दक्षिणामूर्ति की उपासना में गुरु मौन रहता है और शिष्य के संशयों को दूर कर देता है।

मेरे भाई-बहन! इन कुछ लक्षणों से, जिनसे मैं साधु की परख कर सकता हूँ, मेरे परखने के अंदाज हैं, इन कुछ लक्षणों से संत का परिचय और पहचान होती है और ऐसा संत जो मिल जाये, तो ऐसे संत के दर्शन से प्रेम प्रकट होता है और प्रेम प्रगट होता है, तो प्रेम से परमात्मा प्रगट होगा, यह शिव वाक्य है, जिसके आधार पर यह कथा चल रही है।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।

प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।

अग जगमय सब रहित बिरागी।

प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।

प्रेम से परमात्मा प्रगट होता है, यह शिव वाक्य है, लेकिन प्रेम कैसे प्रगट हो, इसकी कुछ विधाएँ रामचरित मानस के आधार पर हम खोज रहे हैं। मानस से एक और विधा, जो इससे भी सरल है। संत के तो मैंने इतने लक्षण दिखाये, इस कसौटी से जो व्यक्ति पार हो जाये, उसको साधु मानना चाहिए। ○○○
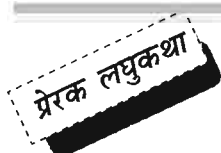
कष्ट परेहु साधुजन कबहूँ न होत मलान

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

हजरत मारूफ दीन-दुखियों की सेवा को भगवान की सेवा मानते थे। एक दिन एक बूढ़ा व्यक्ति उनके घर आया। हजरत ने उसकी अच्छी सेवा की। रात को सोते समय जब वह कराहने लगा, तो हजरत ने उसे बीमार पाया। उन्होंने हकीम को बुलाकर उसे दवा दी और रात भर उसके पैर दबाने लगे। मगर वह व्यक्ति आँखें बन्द कर उन्हें कोसता रहा कि हजरत बड़प्पन दिखाने के लिये सेवा का दिखावा कर रहे हैं। हजरत ने जरा भी बुरा न माना और पाँच दिन तक उसकी परिचर्या करते रहे। पाँचों दिन उसने कोसना बंद नहीं किया। हजरत के पड़ोसी को जब यह बात पता चली, तो हजरत से बोला, ''लानत है ऐसे नमकहराम पर जो सेवा करने पर उपकार के बदले आपको कोसता रहता है। उसे जरा भी इस बात का बोध नहीं है कि जो व्यक्ति लगातार उसकी सेवा में लगा हुआ है, उसे बुरा कहने से उस पर क्या बीतती होगी?'' उसने मारूफ से कहा, ''इस कृतघ्न को आप साफ-साफ अपना रास्ता नापने को क्यों नहीं कहते? ऐसे व्यक्ति पर दया दिखाना बंजर जमीन में बीज बोने जैसा ही है।

हजरत ने मुसकराते हुए पड़ोसी से कहा, ''मैं तो इसकी नाराज होने की अदा पर ही फिदा हूँ। तुम इसे नमकहराम कहते हो, उसके दिल की हालत जानने की तुमने कोशिश नहीं की। उसके अन्दर का दर्द उसके मुँह से शब्दों के द्वारा बाहर आता है। ऐसे व्यक्ति के साथ कड़ाई से पेश आना अन्याय होगा।'' दूसरे ही दिन आराम का अनुभव होने पर वह व्यक्ति चुपचाप चला गया।

जिनके साथ हमारे ममत्व के सम्बन्ध होते हैं, उन्हें ही सुख पहुँचाना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। किन्तु सत्य के मार्ग चलनेवाले सन्त-महात्मा सच्चे महापुरुष होते हैं। दुखी जनों को देखते ही वे उनका दु:ख-दर्द दूर करने में लग जाते हैं। रोगी असाध्य रोग से ग्रस्त क्यों न हो, वे उनकी ओर घृणा की दृष्टि से नहीं देखते। वे उनकी सेवा-शुश्रूषा में विलक्षण सुख का अनुभव करते हैं। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (८९)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

१८-०४-१९६२

विभिन्न पत्रिकाओं में ठाकुर, माँ और स्वामीजी के चित्र होते हैं। आजकल की तरह उन दिनों उनके चित्र इतने सहज प्राप्त नहीं थे, विशेषकर नवागत ब्रह्मचारियों के लिये। खरीदने के लिए जितने पैसों की आवश्यकता है, वह कहाँ पाएगा? जो भी हो, एक व्यक्ति ने तीन चित्र संग्रह किया था। महाराज द्वारा प्रयुक्त कैंची द्वारा धीरे-धीरे किनारे के कुछ अंशों को काट-छाँट कर उन चित्रों को बहुत सुन्दर ढंग से तैयार किया गया था। तदुपरान्त कागज की उन कतरनों को बाहर फेंकने के लिए निकलते ही महाराज ने कहा, ''इन कतरनों को कहाँ फेंकोगे?'' उसने कहा, ''क्यों, कूड़े-दान में।'' महाराज ने कहा, ''नहीं, जहाँ ठाकुर के लिए व्यवहृत फूल-माला को फेंका जाता है, वहाँ फेंकना। ये कतरनें तो इतने दिनों तक ठाकुर, माँ और स्वामीजी के साथ-साथ थीं।''

प्रश्न – स्वामीजी ने कहा है कि संन्यासी समाज-सुधार में अधिक लिप्त नहीं होंगे। समाज के सम्बन्ध में हम लोगों का कैसा भाव रहना चाहिए?

महाराज – स्वामीजी ने मठ की नियमावली में कहा है – संन्यासी समाज-सुधार की ओर अधिक ध्यान नहीं देंगे। किन्तु उन्होंने स्वयं ठाकुर की तिथि-पूजा के दिन यज्ञोपवीत संस्कार कराया था। हमारे छात्रावास में भातृवरण समारोह होता था। वह भैया दूज पर्व के समान था।

छात्रावासों में जो छुट्टी रहती है, उससे कुछ लाभ नहीं होता है। कुछ वर्ष बिलकुल सैन्य अनुशासन जैसे रहना चाहिए। छुट्टी के दिन जो नियमित दिनचर्या भंग की जाती है, वह ठीक नहीं है। एक प्रकार की दिनचर्या में रहकर ही प्रशिक्षण हो सकता है।

छुट्टियों में उन जगहों पर जाना चाहिए, जहाँ भारतीय संस्कृति का परिचय मिले – जैसे, हजारदुआरी नहीं, बल्कि विष्णुपुर, किरीटेश्वरी और कांचनतला जाना चाहिए। उस दौरान कुछ ग्रामीण विकास का कार्य करना चाहिए, किन्तु गाँव के लोगों के साथ परामर्श करके, जिससे गाँव के लोग भी उसकी आवश्यकता समझें, वे लोग सहायता करें और प्रारम्भ किए गए कार्य को आगे चला सकें।

अपने देह-मन के सम्बन्ध में बच्चों को सावधान कर देने की आवश्यकता है। भूख क्या है, भोजन कैसा होना चाहिए, वस्त्र, चलना-फिरना आदि। देह की उन्नति के प्रयत्न में ही प्राण की बात हो जाएगी। सबको मिलकर, एक साथ बैठकर प्राणायाम का अभ्यास करना होगा। उसके लिए मन की एकाग्रता आवश्यक है। एकाग्रता नहीं होने से विद्या, बुद्धि, खेल किसी में भी कुछ भी सफलता नहीं मिल सकती, इसे बताना होगा। एकाग्र जीवन के बारे में सचित्र उदाहरण देकर दिखाना होगा। मन को सदा सच्चिन्तन, उच्च विचारों से भरकर रखने का अभ्यास कराना होगा। सबका यज्ञ करके उपनयन होगा। सभी वैदिक नामों से अभिहित होंगे, गायत्री का ध्यान सभी लोग सीखेंगे – आध्यात्मिक या आत्मपरक जीवन हेतु सर्वोत्तम है। जो लोग केवल इन्हीं भावों से ओतप्रोत रहना चाहेंगे, वे ही रहेंगे। जो दूसरे प्रकार के हैं, उन्हें रखने हेतु बाध्य होने पर भी वे पृथक् ढंग से रहेंगे। यह आन्दोलन लेकर डटकर खड़ा होना होगा। इसमें खूब विरोध सामने आएगा। किन्तु एक बार इस प्रकार के लोगों की जमीन तैयार होते ही फिर सभी लोग इसका अनुकरण

करना चाहेंगे।

इस आन्दोलन को चलाने के लिये सर्वाधिक आवश्यक है – प्रबल सहनशीलता और मातृसुलभ सहानुभूति।

१९-४-१९६२

महाराज – मन का कम-से-कम साढ़े आठ आना (आधा से अधिक भाग) भीतर नहीं रखने से बाह्य जगत मन को खींच लेता है। कर्तव्यबुद्धि जागती है, संसार-भोग की इच्छा होती है, संसार भोग आरम्भ हो जाता है। ठाकुर की तिथिपूजा पर एक विशाल जुलूस निकालो, जिसमें सभी धर्मों के प्रतीक रहें। इसके अलावा स्वाधीनता दिवस पर बालकवृंद 'ये दिन सुनील जलधि होइते' (भावार्थ – जिस दिन नील समुद्र से) इस गीत को गाते हुए जुलूस निकालें, वे भारतीय संस्कृति से परिचित हों। देश के गौरव की दिशा-विशेष को नेत्रों के सामने लाकर रख दो।

प्रश्न – कार्य के साथ हमारा क्या सम्बन्ध है? हम लोग कार्य करते क्यों हैं?

महाराज – यदि तुम चित् (चेतन) और अचित् (जड़) का भेद समझ सको, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ। अध्यात्म-विचार बहुत आवश्यक है। शरीर, प्राण, मन और बुद्धि के क्रिया-कलापों का मानस-दर्शन करो, तब तुम समझ जाओगे – मैं इनसे पृथक् हूँ। इस देह-यंत्र की तकनीक को जानना ही तो एकमात्र साधना है। मैं इस देह-यंत्र के सम्बन्ध में सबको आश्वस्त करने का प्रयास करता हूँ।

२६-४-१९६२

प्रश्न – इस समय आश्रम में बहुत कार्य हो रहा है, सरकार से प्रचुर धन आ रहा है, इससे क्या हम लोगों की कोई हानि होगी?

महाराज – यदि हम लोगों में त्याग रहेगा, तो सब कुछ होगा – धन-मान आदि! कई लोग सोचते हैं कि जैसे सरकार का कृषि, मछली-पालन आदि विभाग है, यह भी वैसा ही एक विभाग है। इसीलिए कोई अधिकारी आते ही बौखला जाता है। इसीलिए मैं कहता हूँ, 'स्वरूप-विज्ञान' जानना आवश्यक है, जिसे नहीं जानने से संन्यास व्यर्थ है। मनुष्य बहुत अच्छा हो सकता है, असभ्य हो सकता है, क्योंकि सिद्धान्त ज्ञान नहीं रहने से, प्रणालीबद्ध प्रशिक्षण नहीं पाने से, वह लोक-व्यवहार, समाज-व्यवहार में बहुत ही अकुशल, अक्षम हो सकता है। जो लोग घर में अच्छा भोजन-वस्त्र, मान-सम्मान पाकर यहाँ आए हैं, वे स्पष्ट बातें कह सकते हैं। जो घर में ऐसा सुअवसर नहीं पा सके हैं, वे समाज में पदासीन या योग्य लोगों को देखकर संकुचित हो जाते हैं।

प्रश्न – लोग देश के सम्बन्ध में अनेक बातें कहते हैं, क्या देश में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है?

महाराज – अनेक युवतियाँ साध्वी बन गई हैं। इस समय लड़कियाँ जाग उठी हैं। मैंने सुना है – एक वृद्ध व्यक्ति सिगरेट पी रहा था, उसकी राख सामने खड़ी एक युवती के वस्त्र पर गिर गई, तो वृद्ध द्वारा उस राख को हटाने के लिए उसके वस्त्र पर हाथ लगाते ही युवती ने वृद्ध को एक थप्पड़ मार दिया! बहरमपुर की कुछ लड़कियाँ आती थीं, सबके साथ चाकू था! एक बार संध्या हो गई थी, सुखदानन्द ने एक नौकर द्वारा एक लालटेन भेज दिया, जिससे उन्हें स्टेशन पर जाने में कोई कठिनाई न हो। उन युवतियों ने डाँटकर उस नौकर को वापस भेज दिया। बाबा, हवा उलटी बह रही है – माँ! हरीश को पीटकर दिखा गई हैं। **(क्रमशः)**

पार्वती ने महादेव से पूछा था – ''प्रभो! सच्चिदानन्द-स्वरूप की चाबी कहाँ है?'' महादेव बोले – ''विश्वास में।'' तुम लोगों को तो रास्ता पकड़ा दिया गया है – विश्वास के साथ साधना करो। तुमने अमूल्य वस्तु पायी है – जी-जान से लग जाओ, अनुशीलन करो। इस प्रकार से साधना करेंगे या उस प्रकार से साधना करेंगे इत्यादि विषय लेकर माथापच्ची करके समय नष्ट मत करो। उन्हें पुकारने से उसका फल मिलता है, फिर वह पुकारना किसी भी तरह से क्यों न हो। ठाकुर कहते थे, ''मिश्री की रोटी सीधी करके खाओ या टेढ़ी करके, खाने से वह मीठी ही लगेगी।'' तुम लोग तो कल्पतरु के नीचे बैठे हो – जो चाहोगे, वही पाओगे।

मनुष्य के अन्दर दो वृत्तियाँ हैं – ''कु'' और ''सु''। इन दोनों में खूब लड़ाई होती है। एक भोग की तरफ खींचना चाहती है, दूसरी त्याग की ओर। इनकी हार-जीत पर मनुष्य का मनुष्यत्व और पशुत्व निर्भर करता है। – स्वामी ब्रह्मानन्द

आज्ञाकारी राजेन्द्र

स्वामी पद्माक्षानन्द

भारत रत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का जन्म बिहार राज्य के सारन जिले के जीरादेई गाँव में दिनांक ३ दिसम्बर, १८८४ ई. को बुधवार के दिन हुआ था। इनके पिता का नाम श्री महादेव सहाय था। राजेन्द्र की माँ का शुभ नाम श्रीमती कमलेश्वरी देवी था। कमलेश्वरी देवी अपने पुत्र को रामायण-महाभारत, भजन-कीर्तन, प्रभाती सुबह-सुबह सुनाया करती थी।

जो व्यक्ति अपने जीवन में आज्ञापालन-रूपी गुण को जितना अधिक महत्त्व देता है, वह अपने जीवन में उतनी ही अधिक सफलताएँ प्राप्त करता है। आइये हम भी एक ऐसे ही महान व्यक्ति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के जीवन की कुछ घटनाओं से आज्ञापालन की शिक्षा प्राप्त करते हैं।

बालक राजेन्द्र में अपने अभिभावकों के प्रति बहुत श्रद्धा और सम्मान था। राजेन्द्र पढ़ाई-लिखाई में बहुत होशियार थे और अपने कड़े परिश्रम के बल पर उन्होंने विद्यालय में 'डबल प्रमोशन' प्राप्त किया था। उनके प्रधानाध्यापक ने बताया – "तुमने परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। इसीलिए तुमको 'डबल प्रमोशन' दिया जायेगा।" राजेन्द्र इससे आनन्दित तो हुये लेकिन उन्होंने कहा "इसके बारे में मैं अपने भैया का परामर्श लेकर ही आपको बता सकूँगा, गुरुजी।" प्रधानाध्यापक उसकी सरलता, नम्रता और बड़ों के प्रति उसकी आज्ञाकारिता की भावना से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने राजेन्द्र को सीधे दो कक्षाओं की उन्नति करके ऊपर की कक्षाओं में भेज दिया।

उन दिनों प्रत्येक मेधावी युवक का उद्देश्य 'इंडियन सिव्हिल सर्विस' की परीक्षा उत्तीर्ण कर ब्रिटिश सरकार का एक बड़ा अधिकारी बनना होता था। राजेन्द्र का भी उद्देश्य यही था। उनके भाई, मित्र तथा शिक्षकों ने आग्रह किया कि वह लन्दन जाकर पढ़ाई करे। इसके लिए उनलोगों ने किसी प्रकार आवश्यक धन-संग्रह भी कर लिये थे। परन्तु राजेन्द्र को विश्वास नहीं था कि उनके माता-पिता उन्हें लन्दन जाने की अनुमति देंगे। उनके पिताजी बीमार थे। इसीलिए उन्होंने गुप्त रूप से जाने की व्यवस्था की। किन्तु शीघ्र ही घरवालों को इसका पता चल गया। उनके पिता ने राजेन्द्र से कहा कि वे उन्हें छोड़कर दूर विदेश नहीं जायें। आज्ञाकारी राजेन्द्र ने अपने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके लन्दन जाने की योजना को स्थगित कर दिया।

भारत के महान नेता गोपालकृष्ण गोखले को राजेन्द्र के प्रतिभाशाली जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। उन्होंने राजेन्द्र को भेंट करने के लिए बुलाया। गोखलेजी ने राजेन्द्र से कहा 'सर्वेण्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी' को आप जैसे युवकों की आवश्यकता है। इस सोसायटी का सदस्य बनने के लिए राजेन्द्र भी बहुत उत्सुक थे। किन्तु उन्होंने श्री गोखले को बताया कि वे अपने घरवालों की राय जाने बिना कोई भी निर्णय नहीं लेंगे। उस समय उनके परिवार की आर्थिक स्थिति दयनीय थी। अत: उनके भाई-बहन ने उनको सोसायटी का सदस्य न बनकर वकालत आरम्भ करने का परामर्श दिया। राजेन्द्र ने सोसायटी का सदस्य बनने की अपनी महत्त्वाकांक्षा को आज्ञाकारिता रूपी वेदी पर बलिदान कर दिया।
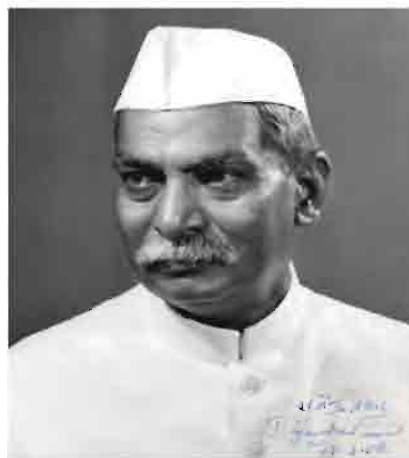
०३.१२.१८८४ से २८.०२.१९६३

राजनीतिक जीवन में राजेन्द्र प्रसाद के माता, पिता, भाई, शिक्षक सभी कुछ महात्मा गाँधी ही थे। गाँधीजी ने अँग्रेजों के विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया। उन्होंने वकीलों से कहा कि वे अदालत में न जाये। राजेन्द्र प्रसाद उस समय वकालत से हजारों रुपया कमाया करते थे। किन्तु उन्होंने आगे-पीछे सोचे बिना ही

शेष भाग पृष्ठ १२२ पर

बाबा श्रीरघुनाथ दास जी

ब्रह्मलीन स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

अमर आश्रम, पँचोखरा, झाँसी (उत्तर प्रदेश)

भगवान भक्तवत्सल हैं। अतएव वे अपने आश्रित जनों का पालन-पोषण समयानुसार विविध रूपों में प्रकट होकर स्वयं करते हैं। प्रभु की इस अनोखी करुणा का अनुभव अनेक भगवदीय जनों को हुआ है। श्रीअवध धाम में स्थित बड़ी छावनी के संस्थापक श्री बाबा रघुनाथदास जी के जीवन की एक सत्य घटना भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है। उन दिनों बाबा श्री रघुनाथदास जी श्रीसरयू किनारे माँझा में कुटिया बना कर रहते थे, सन्त चरणों में आपकी बड़ी प्रीति थी। वे सन्त-सेवा बड़ी श्रद्धा से करते थे, अनेक सन्त आपके आश्रम पर सदैव निवास करते थे। वर्षा-काल में तो यह संख्या हजारों तक पहुँच जाती थी। बाबा का यह नियम था कि जब सभी सन्त भोजन कर लेते, तब आप प्रसाद पाते थे। एक दिन कोठारी ने आकर कहा बाबा, आज का काम तो चल गया, पर कल क्या होगा?

अन्न नहीं कोठार में, कैसे बनिहै बात।
काल्हि रहेगी का प्रभो, भूखी सन्त जमात।।

बाबा बोले –

कोठारी चिन्ता तजो, जाइ करो विश्राम।
आपन काज सम्हारि हैं, प्रभु श्रीसीताराम।।

प्रभु अपनी व्यवस्था आप सम्हालेंगे, लेकिन हाँ, आज मैं प्रसाद नहीं पाऊँगा। कोठारी तो चला गया, इधर बाबा सोचने लगे कि प्रभु कृपालु तो हैं, पर कौतुकी भी हैं, क्या सचमुच कल तक व्यवस्था हो जायेगी? विश्वास कहता है, "कल तो क्या प्रभु चाहें तो पल में व्यवस्था हो सकती है, सन्देह कहता यदि व्यवस्था न हुई तो?

बाबा के मन में उठें, छन छन हर्ष-विषाद।
वा वासर मध्याह्न में, पायो नाँहि प्रसाद।।

मन की इस हलचल से परेशान होकर बाबा अपने आसन पर आ बैठे और माला हाथ में लेकर नाम जप करते हुये मन को समझाने लगे –

अरे मन चिन्ता देहु बिसार।
परम उदार रामजी के सिर है भक्तन को भार।।
जनक दुलारी की दाया सों छन में भरे भँडार,
संकट सागर से सन्त की नाव लगावें पार।
कनक भवन के स्वामिनि-स्वामी सिय-रघुवर सरकार।।

बाबा कभी मन को समझाते, तो कभी प्रभु से प्रार्थना करते हुये कहते –

मेरो नहिं कहुँ आसरो, तुम बिन श्रीरघुराज।
बाँह गहे की राखियो, लाज गरीबनिवाज।।

तभी बाबा ने एक रथ अपनी ओर आते देखा, जिस पर नवदम्पत्ती राजपुत्र और राजवधू की बड़ी सुन्दर मनोहर जोड़ी बैठी हुई थी। रथ बाबा की कुटिया के द्वार पर आकर रुक गया।

अधिक उदास भये बाबा रघुनाथदास
तबहिं राजेस लख्यो रथ एक आयो है।
तेहि पै विराजे सुख सिन्धु रघुराजसीय
वेष नव-दम्पत्ति को बानक बनायो है।।

रथ के रुकते ही नव-दम्पत्ती रथ से नीचे उतरे और सेवक को निर्देश दिया कि मुहरों से भरी हुई दो थैलियाँ, जो रथ के पिछले भाग में रखी हैं, शीघ्र ले आओ। सेवक थैलियाँ लेकर आया, युगल सरकार ने दोनों थैलियाँ बाबा के श्रीचरणों में चढ़ाकर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

स्यन्दन कों त्यागि सन्त वन्दना सप्रेम करि
चरन चढ़ाइ द्रव्य वचन सुनायो है।

बाबा ने अत्यन्त हर्षित होते हुये पूछा, "आप लोग कहाँ से आये हैं?" तो अचानक प्रभु के मुख से निकल गया, "कनक–भवन से।" बाबा ने अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर पूछा, "क्या? कनक–भवन से?" प्रभु ने तुरन्त बात सम्हालते हुए कहा, "हाँ, वहाँ हमारे माता पिता ठहरे हुए हैं, उन्होंने ही हम दोनों को आशीर्वाद पाने के लिए आपके पास भेजा है।"

कनक भवन बीच रुके पितु मातु हमें,

पाइवे असीस ढिग रावरे पठायो है।

अत: इसे स्वीकार कीजिए –

देव दया करि कीजिए, तुच्छ भेंट स्वीकार।

सन्तन की सेवा करहु, कहत जुगल-सरकार।।

बाबा ने सोचा कि यह किसी राजा के पुत्र एवं पुत्र-वधू हैं, लगता है अभी-अभी इनका विवाह हुआ है! इसीलिये इनके माता-पिता ने आशीर्वाद लेने सन्तों के पास भेजा है। कुछ भी हो हमारे परम कृपालु दीनदुखहारी भक्तवत्सल भगवान श्रीसीताराम जी ने ही इन्हें इस बहाने सन्त सेवा के लिये मुझ साधनहीन दीन पर कृपा करके भेजा है, पर यह तो बड़े सुन्दर हैं, ऐसी सुन्दरता तो हमने कभी देखी ही नहीं, कहीं यही तो श्रीसीताराम जी नहीं हैं! मन में आया, 'नहीं, नहीं वे भला मुझ अधम के सामने इस प्रकार क्यों उपस्थित होने लगे! हाँ, उनकी कृपा अवश्य है। बाबा इस प्रकार सोच ही रहे थे, तभी प्रभु श्रीसीताराम जी बाबा के चरणों में प्रणाम करके रथ में बैठकर चल दिए। थोड़ी दूर तक तो रथ दिखाई पड़ा, परन्तु फिर अचानक अदृश्य हो गया। अब तो बाबा सोचने लगे, ''कहीं यह स्वयं श्रीसीताराम जी ही तो नहीं थे, तो सन्देह की निवृत्ति के लिये एक सन्त को कनक–भवन भेजा कि जाकर पता लगाओ कोई राजा साहब अपने पुत्र एवं पुत्र-वधू के साथ क्या कनक–भवन में ठहरे हैं। सन्त कनक भवन गये, लौट कर बाबा को बताया कि वहाँ ऐसे कोई सज्जन नहीं ठहरे हैं। सुन कर बाबा को बड़ा आश्चर्य हुआ, सोचने लगे आखिर वे दोनों कौन थे! रात्रि को जब बाबा सोये तो स्वप्न हुआ।

स्वप्न में सन्त निहारें कहा

प्रगटे सियराम मनोहर जोरी।

सुन्दर रूप सुहावन पावन

बारक हेरि करें चित चोरी।।

बोले कृपालु राजेश सुनो मुनि

संकट मोचन बानि है मोरी।

या ते रहे हमहीं तेहि औसर

संग रहीं मिथिलेश किशोरी।।

युगल सरकार भगवान श्रीसीताराम जी ने प्रगट होकर कहा, ''बाबा तुम्हारी सन्त, भक्ति से प्रसन्न होकर नव-दम्पत्ती के रूप में हम लोग ही तुम्हारे पास आये थे।'' सुनते ही बाबा की नींद टूट गयी, उठकर अपने आसन पर बैठ गये और प्रेमाश्रु बहाते हुए कहने लगे –

जग में स्वारथ मीत सब, सदा न आवें काम।

दीनन की सुधि लेत को, तुम बिन सीताराम।।

।। बोलिए भक्त-वत्सल भगवान की जय।। ○○○

पृष्ठ १२० का शेष भाग

अविलम्ब वकालत छोड़ दी। उन्होंने कुछ मामलों की पैरवी करना स्वीकार किया हुआ था। इसके लिए कुछ रुपये भी स्वीकार कर चुके थे। उन्होंने सभी मामले और रुपये वापस लौटा दिये। जब उन्होंने वकालत छोड़ी, उस समय उनके बैंक खाते में केवल १५/- रुपये ही थे।

'सादा जीवन, उच्च विचार' के सिद्धान्त से जीवन जीने वाले राजेन्द्र प्रसाद २६ जनवरी १९५० को भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने। वे १९५० से १९६२ तक लगातार १२ वर्षों तक भारत के राष्ट्रपति रहे। राजेन्द्र प्रसाद सम्पूर्ण देश में अत्यन्त लोकप्रिय थे। जनता प्रेम से उन्हें 'राजेन्द्र बाबू' कहकर सम्बोधित करती है। १९६२ में उन्हें भारत का सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने २८ फरवरी १९६३ को बिहार, पटना के सदाकत आश्रम में अन्तिम साँसें ली।

हमें अपने माता-पिता, भाई-बहन, आदरणीय परिजन, शिक्षक-शिक्षिका सभी का आज्ञापालन करना चाहिए। इससे हमारे जीवन में अनेक बहुमूल्य रत्न जुड़कर हमारे व्यक्तित्व को अत्यधिक सम्माननीय बनाते हैं। इससे हम अनेक व्यावहारिकता तो सीखते ही सीखते हैं, इसके साथ-ही-साथ हमें उनका बहुमूल्य आशीर्वाद भी प्राप्त होता है, जिसे हम किसी भी मूल्य से खरीद नहीं सकते। ○○○

मन को ही सब कुछ जानो। ज्ञान अथवा अज्ञान – सब कुछ मन की अवस्था है। मनुष्य का मन ही उसे बद्ध और मुक्त, साधु और असाधु, पापी तथा पुण्यवान बनाता है। संसारी जीव यदि मन में सर्वदा भगवान का स्मरण-मनन कर सकें, तो उन्हें फिर और किसी साधना की आवश्यकता नहीं।

– श्रीरामकृष्ण देव

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३९)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

२० जनवरी, १९०३ : मिस मैक्लाउड को

(अपराह्न के तीन बजे, चेन्नै के कैसल कर्नन से) आज स्वामीजी का जन्मदिन है और तुम्हें पत्र लिखने का मैंने संकल्प कर रखा है। पूरी सुबह पूजा-अनुष्ठान में बीता; और पिछले एक घण्टे से मैं विश्राम कर रही हूँ। कल सुबह मैं कलकत्ते के लिये रवाना हो रही हूँ। घर पहुँचकर मुझे बड़ी खुशी होगी।... लगता है – स्वामीजी के प्रत्येक विचार को मानो मैं दुबारा अनुभव कर रही हूँ और ऐसा महसूस करती हूँ कि मैं उन दस हजार विवेकानन्दों को तैयार कर सकती हूँ, जिनके विषय में वे हमेशा कहा करते थे – ठीक वैसे ही जैसे, वे अनेक रामकृष्ण बनाने की बात सोचते और समझते थे।

२८ जनवरी, १९०३ : मिस मैक्लाउड को

मैं केवल शक्ति माँगती हूँ – हर तरह की शक्ति – शक्ति और प्रकाश। दस वर्ष पर्याप्त होंगे। ...

सचमुच ही, मुझे स्वामीजी के ही समान – एकाकी कार्य करके आनन्द मिलता है। प्रिय युम, वे 'मनुष्य चाहिये' – कहकर आर्तनाद करते थे; परन्तु नहीं जानते थे कि जब तक परदा गिरेगा नहीं, तब तक यह स्पष्ट नहीं होगा कि वह कौन-सा 'आदर्श' है, जिसके लिये उन्होंने देह-धारण किया था। जब वह 'भाव' प्रकट हो जाएगा, तो लाखों लोग आकर उनके चारों ओर एकत्र हो जाएँगे। उन रामकृष्ण के समान ही – वे भी अ-सचेतन थे, जिन्होंने कभी कल्पना तक नहीं की थी कि वे अ-सचेतन हो सकते हैं।

अब लोग स्वयं ही आते हैं। किसी की भी सहायता की जरूरत नहीं। वे एक चुम्बक हैं – और स्वयं ही लौह-कणों को खींच लाते हैं।

२३ अप्रैल, १९०३ : सेंट डोरा को

(सेंट डोरा अत्यन्त बीमार हैं)

प्रिय सन्त डोरा, यदि तुम सचमुच ही इतनी जल्दी छोड़कर चली जाओ; और इसके बाद अपने दृढ़ विश्वास के अनुसार यदि तुम उनका साक्षात्कार पाओ, जिन्हें मैं अपनी समस्त प्रार्थनाओं में सम्बोधित करती हूँ, तो उनसे कहना कि वे मेरे हृदय की गहराई में दृष्टिपात करें और देखें कि जिन दिनों उनके प्रति मेरी निष्ठा पर उन्हें पूर्ण विश्वास था, तब से इसमें कोई परिवर्तन आया है या नहीं; और कहना कि इसे तोड़ना और इसका टूटना उन्हीं का कार्य है। यही वरदान मैं उनसे माँगना चाहूँगी। उनसे यह भी कहना – क्या केवल अवतार ही ऐसा नहीं कह सकते कि 'जिस तरह से भी हो सके, मुझसे प्रेम करो। मुझसे प्रेम करना ही मुक्ति है। (ये बातें स्वामीजी ने कही थीं।)...

और तब, तुम उन्हें क्या समाचार दोगी? वे अपने पीछे एक विचार – एक भाव छोड़ गये हैं। और जब मैं पृथ्वी के इतिहास पर दृष्टिपात करती हूँ, तो देख पाती हूँ कि कोई भी विचार विशुद्ध रूप से प्रसारित नहीं हुआ। इसलिये – मनुष्य सर्वदा संघर्ष करने को मजबूर है; यदि कोई संघर्ष सफलता से मण्डित होता है, तो वही कदाचित् उसकी चरम पराजय है। अथवा यदि इसमें सफलता न मिले, यह जो प्रत्यक्ष पराजय है, इसको वरण करने का मुझमें साहस नहीं है।

क्या यह सच नहीं है कि हमारे प्रति उनका प्रेम, एक चिरन्तन प्रेम है? ...

हम लोगों के बीच से चले जाने के बाद भी, वे पुन: हमारे पास आना चाहते हैं, सहायता करना चाहते हैं और मार्गदर्शन करना चाहते हैं। तुम्हारी रुग्णता और एकान्त के इन क्षणों में क्या अब भी श्रीरामकृष्ण तुम्हारे पास हैं? अहा, उनके साथ एकान्त में रहकर तुम्हें कितनी कृतज्ञता का बोध

होता होगा! तुम्हारे ऊपर किसी भी चिन्ता या उत्तरदायित्व का भार नहीं है। तुम बीमार होने को स्वाधीन हो।

प्रिय सेंट डोरा, क्या तुम जानती हो कि तुम कितनी सौभाग्यवान हो? ...

अहा, तुम्हें जो दृष्टि प्राप्त है, तुम्हारे इस सौभाग्य के कारण मुझे तुमसे कितनी ईर्ष्या होती है! 'चिर शान्ति' के साथ तुम हमारी संयोग-सूत्र हो, हमारे लिये तुम्हारे अस्तित्व का क्या मूल्य है, इसे तुम नहीं जानती। जीवन – एक असफलता जैसा प्रतीत होता है। तथापि अब भी, यदि तुम कहो कि तुमने देखा – श्रीरामकृष्ण हम लोगों के हाथ पकड़कर लिये जा रहे हैं, तो मुझे उस पर विश्वास हो जाएगा।

२९ अप्रैल, १९०३ : सेंट डोरा को

मुझे भय है कि तुम अकेली हो; और सचमुच ही मेरी बड़ी इच्छा होती है कि तुम्हारे पास चली आऊँ। परन्तु प्रिय डोरा, मैं ऐसा नहीं कर सकती। तुम इसका कारण समझ सकोगी, यह मैं जानती हूँ। सफलता मिले या असफलता मुझे अपनी निष्ठा बनाये रखनी होगी; और यद्यपि बहुधा यह असफलता ही दीख पड़ती है, तथापि जब वे अपने विराट् हृदय से, इन चीजों की तरफ हम लोगों की अपेक्षा बृहत्तर दृष्टि से देखते हैं, तो जहाँ हम लोग निराशा तथा विवशता देखते हैं, वहाँ उन्हें सफलता दिखती है। ...

परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि मैं अपनी मृत्यु के पूर्व, उनके नाम पर साहसपूर्ण सत्यों का सन्देश दे सकूँ; और मेरी उस वाणी के द्वारा उनका जीवन निर्मल तथा अबाध रूप से प्रवाहित हो। इसके फलस्वरूप मैं उनके मुखमण्डल पर उस अन्तिम विश्वास को आलोकित हुआ देख सकूँ। वे यह जानकर अनन्त की ओर प्रस्थान करें कि मैंने उन्हें निराश नहीं किया। बस, यही! यही! यही! मेरी प्रार्थना है।

२० मई, १९०३ : मिस मैक्लाउड को

मैं स्वयं इतने आत्मविश्वास का अनुभव किया करती थी,... मुझे स्वयं में इतनी प्रबल जीवनी-शक्ति का अनुभव होता था कि लगता – मानो मैं संसार को उलट-पलट सकती हूँ! तथापि आज मैं हवा में रुदन कर रही हूँ और हवा मेरे रुदन को प्रतिध्वनित कर रही है! अहा, स्वामीजी! आपने मुझ पर कितना विश्वास रखा था!

परन्तु मैं उन्हें – श्रीमाँ, श्रीरामकृष्ण और स्वामीजी को क्षमा नहीं कर सकती। परन्तु इसके बावजूद, मैं पूरी दुनिया के बदले में भी स्वामीजी की शान्ति में बाधक नहीं होना चाहूँगी। मैंने तो केवल उन्हीं के लिये, उनका भार वहन करने की कामना की थी; यदि मुझे क्रमश: विलुप्त हो जाने की अनुमति दी गयी होती, तो...! तुम जानती हो कि मैं निष्ठावान रहना चाहती हूँ। वे लोग इसमें मेरी सहायता कर सकते थे, मुझे सही मार्ग पर चला सकते थे। हाँ, यह बात ठीक है कि मुझे लगता है कि मुझे ठीक ढंग से चला पाना कोई सहज कार्य नहीं है।

१८ अगस्त, १९०३ : मिस मैक्लाउड को

मैं अपने भीतर दर्शन, अनुभव तथा भक्ति की एक महान् शक्ति का अनुभव कर रही हूँ; और मैं देख रही हूँ कि यह शक्ति बहुत-बहुत दुर्लभ है। लोगों की विचार-शक्ति पर, मानो एक तरह का नैतिक पक्षाघात हावी हो गया है। जो लोग उत्तम प्रतीत होते हैं, जब उन्हें एक नवीन धर्मयुद्ध की हुँकार के साथ चारों ओर बिखरी चीजों पर आक्रमण बोल देना चाहिये था, तब भी वे बेकार की चीजों को लेकर व्यस्त हैं। और बुरे लोग तो इनमें डूबे ही हुए प्रतीत होते हैं।

२३ सितम्बर, १९०३ : मिस मैक्लाउड को

कदाचित् तुम जानती हो कि मैं इन सर्दियों के दौरान पश्चिम में नहीं आ रही हूँ। मैंने मि. स्टेड[१] को लिखकर उनके प्रस्ताव के निरस्त होने की सूचना दे दी है। यद्यपि उनका प्रस्ताव मेरी किसी भी कल्पना से बड़ा था। परन्तु यहाँ पर इतने अधिक मार्ग खुलते जा रहे हैं – बेट का स्कूल, मुसलमानों के साथ सम्पर्क, मिस लॉकबुड द्वारा हम लोगों के बीच योगदान की सम्भावना, विज्ञान का कार्य और पड़ोस में ही सैकड़ों योजनाएँ, यह सब देखकर मुझे लगता है कि स्वामीजी मुझे यहीं रखने के इच्छुक हैं। आखिरकार, मेरे विचार में, यही तो उनकी मुख्य तथा स्थायी इच्छा है। "उनकी इच्छा ही मेरी शान्ति है।"... उनके जीवन पर मैं निरन्तर चिन्तन करती रहूँगी – इसी से मेरे मन में अनेक विचार उमड़ने लगे हैं। ***(क्रमशः)***

१. ये इंग्लैंड में 'रिविउ ऑफ रिविउज' नामक पत्रिका के सम्पादक थे।

आत्मावलोकन

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

रत्नाकर नाम का एक डाकू था। वह जंगल के मार्ग से जाने वाले लोगों को लूटकर उन्हें मार देता तथा इस प्रकार वह अपने परिवार का भरण-पोषण किया करता था। एक दिन उसी मार्ग से नारदजी जा रहे थे। नारदजी ने उससे पूछा कि वह यह पाप कर्म क्यों कर रहा है? तब उसने कहा कि वह अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए यह कार्य कर रहा है, इसमें पाप कैसा? तब नारदजी ने उससे कहा कि अच्छा यह पाप है या नहीं, इसका पता तुम अपने परिवार वालों से पूछ कर ही लगा सकते हो। तुम जो यह कार्य कर रहे हो क्या इस बात में तुम्हारे परिवार वाले भागीदार होंगे? उसने कहा – हाँ, क्यों नहीं? नारदजी ने कहा – अच्छा तुम एक काम करो। अपने परिवार वालों से पूछ कर आओ कि क्या वे तुम्हारे इस पाप कर्म में भागीदार होंगे? डाकू रत्नाकर ने नारद जी को एक वृक्ष से बाँध दिया और अपने परिवार वालों के पास प्रश्न का उत्तर जानने चला गया। जब रत्नाकर ने अपनी पत्नी से पूछा तब उसकी पत्नी बोली- स्वामी मैंने तुम्हारे सुख-दुख में साथ देने का वचन दिया है, लेकिन आपके पाप कर्मो में मैं भागीदार कैसे हो सकती हूँ? इसके पश्चात उसने अपने पिता से पूछा। पिता ने कहा - वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण उसके पुत्र का दायित्व होता है। अत: उसके पाप में वे भागीदार कैसे हो सकते हैं? डाकू रत्नाकर की मानो आँखें खुल गईं, उसका मिथ्या विश्वास धराशाई हो गया। इस घटना ने उसके जीवन में ऐसा आत्मावलोकन करवाया कि उसका जीवन ही परिवर्तित हो गया। वह उल्टे पैर नारदजी के पास पहुँचा। नारदजी ने उसे भगवान का नाम जप करने का उपदेश दिया। इस प्रकार डाकू रत्नाकर अपने तप के प्रभाव से भविष्य में ऋषि वाल्मीकि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह आत्मावलोकन प्रगति का द्योतक है, आइए आत्मावलोकन पर अवलोकन करें -

आत्मावलोकन की आवश्यकता

हमारे पास दूसरों को उपदेश देने के लिए सदैव अनन्त भण्डार होते हैं, परन्तु अपने जीवन की गुत्थियों को सुलझाने के लिए अपनी झोली खाली होती है। कई बार ऐसा होता है जब हम दूसरों को बदलने का प्रयास करते हैं परन्तु अन्त में हमें यह समझ आता है कि हम जगत को नहीं बदल सकते, बल्कि स्वयं को बदलकर अपने जीवन को धन्य कर सकते हैं। वास्तव में हमें दूसरों की बुराइयाँ बहुत ही सहज रूप से दिखाई देती हैं पर स्वयं की बड़ी-बड़ी भूलें भी हम देख नहीं पाते, इसलिए हमें आत्मावलोकनरूपी दृष्टि की परम आवश्यकता होती है। जिस प्रकार व्यक्ति दर्पण में देखकर अपने रूप को सँवार लेता है। उसी प्रकार व्यक्ति आत्मावलोकन के द्वारा अपने दोषों को देखकर उन्हें दूर कर सकता है और अपने जीवन को सँवार सकता है। हम अपने अनुभवों से ही सबसे अधिक सीखा करते हैं और उन अनुभवों को हम आत्मावलोकन के माध्यम से ही सँजो सकते हैं। आत्मावलोकन के द्वारा हम मात्र अपनी त्रुटियों को ही नहीं, बल्कि अपनी प्रगति में सहायक तत्त्वों को तथा बाधाओं को भी देख सकते हैं और इस प्रकार हम अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

निंदा का सदुपयोग

कई बार ऐसा भी होता है कि लोग हमें हमारी त्रुटियों को बताते हैं, परन्तु हम अहंकारवश उसे स्वीकार नहीं करते। हो सकता है कि हम ठीक भी हों, परन्तु यह भी तो हो सकता है कि हम दूसरों के द्वारा इंगित अपनी त्रुटियों का अवलोकन करें, कहीं हम पूर्व से बेहतर कर सकें। दूसरों के द्वारा की गई निंदा से अधिकतर हम आहत होकर उनकी भी निंदा करने लगते हैं अथवा मन ही मन उन्हें दोषी मानते हैं। इस प्रकार का विचार आत्मावलोकन नहीं कहा जा सकता। वास्तव में आत्मावलोकन स्वयं की निष्पक्ष जाँच होती है। अधिकांशत: हम अपनी भूलों को स्वीकार नहीं करना चाहते, परन्तु हमारे सामने यह एक अच्छा अवसर होता है जब हमें सरल रूप से आत्मावलोकन का विषय मिल जाता है। मनुष्य से त्रुटियाँ तो होती ही हैं। कोई भी व्यक्ति पूर्ण रूप से अच्छा अथवा बुरा नहीं होता। भूल होना कोई अपराध नहीं है परन्तु भूलों को दोहराते रहना अवश्य ही अपराध है और इससे बचने के लिए हम आत्मावलोकन का सहारा ले सकते हैं। आत्मावलोकन करके हमें दूसरों की अच्छाइयों को सीखने का तथा अपनी त्रुटियों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। कबीर दास जी कहते हैं -

निंदक दूर न कीजिये, कीजै आदर मान।
निर्मल तन मन सब करै, बके आन ही आन।

अर्थात अपने निंदक को दूर ना करो, बल्कि उसका आदर-सत्कार करो। वह आपके आचरणों के विषय में कुछ दूसरा ही बकबक कर आपके तन-मन-वचन को शुद्ध करेगा।

आत्मावलोकन न करने के दुष्परिणाम

मनुष्य से भूलें तो होती ही हैं परन्तु बुद्धिमान तो वही व्यक्ति होता है जो समय रहते अपनी भूलों को सुधार ले और इसके लिए उसे आत्मावलोकन की आवश्यकता होती है। समय रहते आत्मावलोकन न करने पर स्वयं को बाद में पछतावा होता है, परन्तु उस पछताने का कोई लाभ भी नहीं होता। कहते हैं '**अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत**' और वास्तव में यह सत्य भी है। अधिकांशत: देखा गया है कि वृद्धावस्था में व्यक्ति अपने जीवन का आत्मावलोकन करता है, तब शरीर की शक्तियाँ क्षीण हो चुकी होती है। यह सोचना कि मैंने यह किया होता तो अच्छा होता, वह किया होता तो अच्छा होता, निरर्थक ही सिद्ध होता है बल्कि उससे मन का दुख और बढ़ जाता है। विद्यार्थी यदि परीक्षा के समय यह सोचे कि काश मैंने प्रारम्भ से ही अच्छी पढ़ाई की होती तो अच्छा होता, तो ऐसे समय में सोचकर भी विद्यार्थी परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन नहीं कर सकता। यदि साधक वृद्ध होने के बाद यह सोचे कि काश मैंने युवावस्था में ही यथासम्भव साधना की होती तो फल कुछ और होता, तब ऐसे सोचने का कोई लाभ नहीं होता। भूत के विषय में सोचते रहना या भविष्य की कल्पना करते रहना भी आत्मावलोकन नहीं है। वस्तुत: वर्तमान ही जीवन है। जो वर्तमान को सही ढंग से प्रयोग करता है वही जीवन में सफल और संतुष्ट हो पाता है। अत: हमें समय रहते आत्मावलोकन कर लेना चाहिए।

व्यक्तित्व-निर्माण का आधार

किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व तभी निखर सकता है जब वह निरन्तर अपने में सद्गुणों की वृद्धि करता रहे तथा साथ ही साथ अपने दुर्गुणों को दूर करता रहे। परन्तु यह तभी संभव हो सकता है जब व्यक्ति अपना आत्मावलोकन करता है। समय और परिस्थितियाँ हमें बहुत कुछ सिखाते रहती हैं पर वे ही उसका लाभ ले पाते हैं जो आत्मावलोकन करते रहते हैं। एक युवक सदा उदास रहा करता था। एक दिन वह एक आश्रम गया। वहाँ के एक संन्यासी से मिला। संन्यासी ने उससे बहुत अच्छे से बात की। युवक बहुत प्रभावित हुआ। फिर वह समय मिलने पर संन्यासी से मिलने जाया करता। संन्यासी उससे बहुत अच्छी-अच्छी बातें किया करता, कहानी सुनाया करता। एक दिन संन्यासी ने युवक से उसके और उसके परिवार के विषय में पूछा। तब उसने बताया कि उसके माता-पिता सदैव झगड़ा करते रहते हैं। उसका एक बड़ा भाई है जो पढ़ाई में बहुत अच्छा है, जिसके कारण सब उससे ही प्रेम करते हैं और मेरी सदा उपेक्षा की जाती है। संन्यासी ने स्थिति को भाँप लिया। इसके पश्चात संन्यासी उस युवक को प्रोत्साहित करने लगा। संन्यासी ने उससे आत्मावलोकन करने को कहा कि तुम्हारी उपेक्षा क्यों की जाती है इसके विषय में तुम सोचो। यदि तुम पढ़ाई में अच्छे नहीं भी हो तो भी, बाकी और क्या-क्या दुर्गुण हैं जिसके कारण तुम्हारी उपेक्षा की जाती है। संन्यासी के प्रति उसके मन में श्रद्धा थी इस कारण वह संन्यासी की बातों को मानने लगा। वह आत्मावलोकन करने लगा तथा अपने दुर्गुणों के विषय में संन्यासी को बताने लगा। संन्यासी उससे

उन दुर्गुणों से बचने का उपाय बताने लगे। इस प्रकार उस युवक ने अपने जीवन में बहुत परिवर्तन कर डाले। जिसे देखकर उसके परिवार वाले, मित्र, तथा शिक्षकों को आश्चर्य होने लगा कि एक साधारण युवक जिसमें न पढ़ाई के गुण थे, ना व्यवहारिक गुण थे, वह इतना समझदार कैसे हो गया और अब पढ़ाई में भी बेहतर प्रदर्शन किस प्रकार कर पा रहा है। पर वास्तव में युवक ने अपना ठीक-ठीक आत्मावलोकन किया था। उसकी निष्पक्ष समीक्षा ने उसके व्यक्तित्व-निर्माण की एक नई राह बना दी थी। उस युवक की भाँति हम सभी आत्मावलोकन के माध्यम से अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर सकते हैं। व्यक्तित्व-निर्माण एक सतत प्रक्रिया है, इसलिए हमें आत्मावलोकन का अभ्यास करना चाहिए।

कौशल की खोज

कई बार विद्यार्थी दूसरों के प्रभाव में कुछ ऐसे विषय का चयन कर लेते हैं जिससे उन्हें असफलता मिलती है। कई बार युवक कुछ व्यवसाय प्रारम्भ करते हैं और उन्हें असफलता मिलती है। ऐसी स्थिति में हमें शान्त मन से आत्मावलोकन करना चाहिए कि इस असफलता का क्या कारण है। क्या हम दूसरे विषय को पढ़कर अच्छा प्रदर्शन कर सकते हैं? क्या हमारी रुचि पढ़ाई से अधिक खेल या गायन आदि अन्य कलाओं में है, जिसमें हम श्रेष्ठ प्रदर्शन कर सकते हैं? क्या वर्तमान व्यवसाय में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा है? अथवा अन्य व्यवसायियों से हम अधिक कीमत लगा रहे हैं? क्या हमारा व्यवहार अच्छा नहीं है? ऐसे विभिन्न पहलुओं पर आत्मावलोकन करना चाहिए। आत्मावलोकन के माध्यम से हमें अपना कौशल खोज लेना चाहिए जिससे हम सफल हो सकें।

दिनचर्या का आत्मावलोकन

दिनचर्या का आत्मावलोकन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। यदि किसी व्यक्ति की दिनचर्या अनियमित हो तो वह कोई भी कार्य ठीक ढंग से नहीं कर सकता। वहीं एक नियमित दिनचर्या होने से समय का सदुपयोग होता है, जिससे व्यक्ति कुशलता से अपने कार्य सम्पन्न कर सकता है। यदि हम सफल लोगों की एक सूची बनाएँ तो यह पाएँगे कि उनकी दिनचर्या अत्यन्त व्यवस्थित थी। यदि प्रतिदिन उठकर कोई यह सुनिश्चित करने लगे कि उसे क्या करना है तब वह सोचने में ही अपना समय गवाँ देता है। दिनचर्या मात्र नियमित होने से ही सफलता नहीं मिल सकती, बल्कि आत्मावलोकन के माध्यम से हमें अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक कार्य को निर्धारित समय देना चाहिए। यदि सुबह उठकर कोई मुँह धोने में ही एक घण्टे लगा दे, अखबार पढ़ने में ही दो-तीन घंटे व्यतीत कर दे, चाय पीने में ही एक घंटे लगाए, ऐसे नियमित दिनचर्या होने पर भी वह सफल नहीं बन सकता। इसके लिए उसे प्रत्येक कार्य का समय निर्धारित कर लेना चाहिए। प्रत्येक कार्य का समय निर्धारित होने पर वह अपने आवश्यक कार्यों को अधिक समय दे सकता है और सफलता की ओर अग्रसर हो सकता है। अत: हमें अपनी दिनचर्या का आत्मावलोकन करके उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करना चाहिए तथा जो आवश्यक हो, उसका नियमित रूप से पालन करना चाहिए।

कार्य का आत्मावलोकन

एक शिक्षिका एक विद्यालय में भूगोल पढ़ाया करती थी। विद्यार्थी उनके पढ़ाने का ढंग पसन्द नहीं किया करते थे क्योंकि वह कक्षा में पुस्तक निकालकर तब तक पढ़ा करती थी, जब तक कक्षा समाप्त करने का समय न हो जाए। विद्यार्थी इस प्रकार की पढ़ाई से ऊब जाया करते थे तथा कुछ समझ भी नहीं पाते थे। विद्यार्थियों और प्रधानाचार्य के कहने पर भी उनकी शिक्षा-पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं आ रहा था। विद्यार्थियों के अंक अन्य विषयों में अधिक तथा भूगोल में अत्यन्त कम आया करते थे। प्रधानाचार्य के द्वारा इसका कारण पूछने पर वह यह कहा करती थी कि भूगोल में अच्छे अंक लाना कठिन होता है। लगभग पाँच वर्ष पश्चात उनकी पाठशाला में उनकी पुत्री ने प्रवेश लिया। परीक्षा फल आने पर अन्य विद्यार्थियों की भाँति शिक्षिका की पुत्री के अंक भी भूगोल में कम थे। शिक्षिका ने अपनी पुत्री को डाँटते हुए कहा कि तुम मेरी बेटी हो, कम से कम तुम्हें तो भूगोल में अच्छे अंक लाने चाहिए। तब उसकी पुत्री ने उनके पढ़ाने के ढंग को इसका कारण बताया। तब शिक्षिका को इसका दु:ख हुआ। तभी उसकी पुत्री ने यह भी कहा कि विज्ञान एक कठिन विषय है परन्तु विज्ञान की शिक्षिका बहुत अच्छा पढ़ाती हैं। बहुत से उदाहरण देती हैं, मॉडल बनाकर पढ़ाती हैं, चित्र दिखाती हैं। शिक्षिका को यह भान हुआ कि जब वह पढ़ाने के लिए जाती है तो किसी भी प्रकार की कोई तैयारी करके नहीं जाती। आज उनकी पुत्री का अंक कम होने के कारण उन्हें दु:ख हो रहा है पर इससे पूर्व कितने ही विद्यार्थियों के अंक कम आए

थे पर उसके लिए उनके मन में कभी खेद नहीं हुआ था। ज्ञान देने वाली शिक्षिका आज स्वयं जैसे एक कटघरे में थी और उसे अपने कार्य का आत्मावलोकन स्वत: हो रहा था। इसके पश्चात शिक्षिका ने अपने पढ़ाने की पद्धति में विभिन्न परिवर्तन किए, जिससे विद्यार्थियों के अंक भूगोल में सर्वाधिक आने लगे तथा विद्यार्थियों की भूगोल में विशेष रुचि होने लगी। हम भी आत्मावलोकन के माध्यम से अपने कार्यों में आवश्यक परिवर्तन लाकर अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक कर सकते हैं।

जीवन का आत्मावलोकन

इससे पहले की जीवन की शाम हो जाए, हमें अपने जीवन का आत्मावलोकन कर लेना चाहिए। यदि युवावस्था की भरपूर शक्ति को मन की चंचलता के अनुसार नाचते हुए गवाँ देंगे तो एक दिन शरीर की शक्ति जीर्ण हो जाएगी और हमारे हाथ दुख और अशांति को छोड़कर कुछ नहीं लगेगा। जीवन और जीविकोपार्जन दो भिन्न पहलू हैं। जीविकोपार्जन में हम नौकरी या व्यवसाय आदि के विषय में सोचते हैं, जिससे हम अपने परिवार का भरण-पोषण करते हैं, अपने प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। जब व्यक्ति अपने क्षुद्र जीविकोपार्जन से उठकर कुछ करता है, वही उसका जीवन होता है। यूँ तो कीट-पतंगों की तरह कितने लोग जन्म लेते हैं और मरते हैं, पर कुछ विरले ही होते हैं जो अपना जीवन जीकर दिखाते हैं, जो दूसरों के लिए आदर्श हो जाता है। और ऐसा जीवन हम तभी बना सकते हैं जब हम अपने जीवन का निष्पक्ष आत्मावलोकन करें।

महापुरुषों की प्रेरणा

सिद्धार्थ ने पहले तो केवल तिल-चावल खाकर तपस्या शुरू की, बाद में कोई भी आहार लेना बंद कर दिया। शरीर सूखकर काँटा हो गया। तपस्या करते हुए छ: वर्ष बीत गए, पर सिद्धार्थ की तपस्या सफल नहीं हुई। एक दिन कुछ स्त्रियाँ किसी नगर से लौटती हुई वहाँ से निकलीं, जहाँ सिद्धार्थ तपस्या कर रहे थे। उनका एक गीत सिद्धार्थ के कानों में पड़ा- 'वीणा के तारों को ढीला मत छोड़ दो। ढीला छोड़ देने से उनका सुरीला स्वर नहीं निकलेगा। पर तारों को इतना कसो भी मत कि वे टूट जाएँ।' बात सिद्धार्थ को जँच गई। वे मान गए कि नियमित आहार-विहार से ही योग सिद्ध होता है। अति किसी बात की अच्छी नहीं होती। किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिए मध्यम मार्ग ही ठीक होता है। बुद्धदेव कठोर तपस्या कर रहे थे। भोजन न करने के कारण उनका शरीर जीर्ण हो चुका था। ऐसे समय में सुजाता नामक एक युवती ने उन्हें पायस दिया। पायस खाने के उपरान्त उनके देह में पुन: शक्ति आई और उन्होंने आत्मावलोकन किया कि अत्यधिक कठोरता अथवा अत्यधिक भोग; दोनों ही के द्वारा साधना नहीं हो सकती। वरन् मध्यम पथ का अवलम्बन करके ही ठीक-ठीक साधना की जा सकती है। परवर्तीकाल में यही सिद्धार्थ आत्मानुभूति के पश्चात गौतम बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार हमें यह शिक्षा मिलती है कि महापुरुष भी अपने जीवन में आत्मावलोकन के माध्यम से अग्रसर होते रहे हैं। अत: हमें भी आत्मावलोकन करके अपनी भूलों में सुधार लाकर अग्रसर होना चाहिए।

उपसंहार

कबीर दास जी कहते हैं -

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल देखा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।

अर्थात जब मैं इस संसार में बुराई खोजने चला तो मुझे कोई बुरा ना मिला, जब मैंने अपने मन में झाँक कर देखा तो पाया कि मुझसे बुरा कोई नहीं है।

वस्तुत: यदि हम निष्पक्ष रुप से आत्मावलोकन करें, तो हमें अपने अन्दर परिवर्तन करने योग्य बहुत से आयाम दृष्टिगोचर होंगे। यदि हमें किसी को जाँचना हो तो स्वयं को जाँचना चाहिए, यदि हमें किसी को ज्ञान देना हो तो स्वयं को ज्ञान देना चाहिए, यदि किसी में परिवर्तन लाना हो तो स्वयं में परिवर्तन लाना चाहिए। आत्म-सुधार अपने जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि और मानव जाति की श्रेष्ठतम सेवा होती है तथा इसकी कुंजी आत्मावलोकन में निहित है। ○○○

भजन एवं कविता

राम राम राम कहना जी

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

राम राम राम कहना जी।
सदा भजन में रहना जी।।
सीधी रीढ़ कर बैठो सुखासन,
शब्द सुरति में बहना जी।।
सदा भजन में ...
भाग नासिका अग्र निहारो,
रखो अधखुले नयना जी।।
सदा भजन में ...
अपने आप में आप निहारो,
सुन सद्गुरु के बयना जी।।
सदा भजन में ...
सहज भाव से सब स्वीकारो,
किसी से कुछ मत कहना जी।।
सदा भजन में...
निन्दा स्तुति सर्दी-गर्मी,
शान्त भाव से सहना जी।।
सदा भजन में ...
आती जाती साँस निहारो,
यही बात उर धरना जी।।
सदा भजन में ...
राजेश्वर आनन्द में रहकर,
जन्म सफल निज करना जी।।
सदा भजन में ...

(यह महाराज के जीवन का अन्तिम भजन है, जिसे उनके सेवक सतीश ने भेजा है।)

ठाकुर तारो अबकी बार ।

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

ठाकुर तारो अबकी बार ।
बीच भँवर में पड़ा हूँ कबसे,नहीं है जग में अब निस्तार।।
मैं गुणहीन अधम मूरख हूँ, पड़ा हुआ हूँ तेरे द्वार ।
बहुत देर हो गई है भगवन् करो न अब कुछ सोच-विचार।
तुम बिन मेरा और न कोई, छोड़ दिया हूँ सब संसार ।
एक आस बस कृपा तुम्हारी कैस विधि पाऊँ यही विचार ।।
घर संसार मित्र अरु परिजन जानूँ इनको पूर्ण असार ।
एक तत्त्व बस तुम ही मेरे, यही है मेरा जीवन सार ।।

होली खेलत राम मुरारी

होली खेलत राम मुरारी।
दोनों दल में बाल सखा बहु, कर कांचन रंग झारी।
कोउ अबीर गुलाल उड़ावत, को मारत पिचकारी।
झाँझ मजीरा कोउ बजावत, कोल ढोलक करतारी।
कटि पर फैंट कसी सब बालक, सिर चीरा जरदारी।
होली खेलत राम मुरारी।
(गोपाल विलास से)

आध्यात्मिक जिज्ञासा (५१)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज! तपस्या में जाने पर उस समय हमारी कैसी दिनचर्या होनी चाहिए? तपस्या के सम्बन्ध में हमारी ठीक धारणा नहीं है।

महाराज – ठीक है। और क्या करोगे? ईष्टनाम का जप करना, ध्यान करना और मन को देखना। मन का बहुत विश्लेषण करना होता है। किस कार्य के लिये आया था, किस कार्य में समय चला गया। समय का ठीक-ठीक उपयोग कर रहा हूँ कि नहीं विश्लेषण करना पड़ता है। एकान्तवास का यही लक्ष्य है। पास में किसी साधु के रहने से यदि मन का मेल रहे, तो उनको देखना चाहिए, उनके जीवन को देखना चाहिए।

– महाराज! पढ़ना उचित है क्या?

महाराज – थोड़ा-थोड़ा पढ़ने पर भी वह गौण है।

– महाराज! कितने दिनों तक ऐसी लगातार तपस्या करनी अच्छी है?

महाराज – जितने दिनों तक उत्साह के साथ साधन-भजन कर सकोगे। उत्साह कम हो जाने पर केवल रोटी ठोककर समय गँवाने से कोई लाभ नहीं होता है। ऐसा एकान्त वास लगातार अधिक दिनों तक करना बहुत सहज नहीं है। माधवानन्द स्वामी ने एक बार कहा था – छह मास तक ऐसा रहने के बाद ऐसा लगा मानो मस्तिष्क खाली हो गया। तब सोचो, माधवानन्द स्वामी ने ही ऐसा कहा था। वे तो साधारण पुरुष नहीं थे। तपस्या में जाने के पहले मन को तैयार कर लेना पड़ता है। नहीं तो, लाभ नहीं होता है। मैं तपस्या में जाऊँगा, यह बात महापुरुष महाराज को कहते ही अत्यन्त उत्साह देकर महाराज ने कहा था – "तपस्या में जाने के पहले खूब जप-ध्यान करो, मन को तैयार कर लो।"

– वे लोग बहुत उत्साह देते थे क्या?

महाराज – कम-से-कम मुझको तो दिए हैं। मैं तो उत्साह पाया हूँ। क्यों, हमलोग क्या दूसरे प्रकार से कहते हैं?

– नहीं, वैसी बात नहीं है, वास्तव में हमलोग ही वैसा नहीं कर पाते हैं।

महाराज – हाँ, ऐसा ही है।

– बीच-बीच में तपस्या में जाना चाहिए यही तो?

महाराज – हाँ, छुट्टी मिलने पर जाना चाहिए। नहीं तो नाम काट देंगे। (सभी हँसते हैं।)

– महाराज! तपस्या के सम्बन्ध में माधवानन्दजी ने कहा था – मस्तिष्क खाली हो गया। मस्तिष्क खाली हो जाने का क्या अर्थ है?

महाराज – अर्थात् मस्तिष्क अब चिन्तन नहीं कर पा रहा है।

– महाराज, तपस्या के दो स्थान हैं – एक हमलोगों का ही कोई आश्रम और दूसरा कहीं बाहर। इन दोनों में किसका चयन करना चाहिए?

महाराज – बाहर रहना चाहिए। केवल हमारे आश्रम में नहीं। यहाँ तक कि वहाँ कोई परिचित न रहे। जन-समूह से दूर रहना चाहिए। भिक्षा करके खाना चाहिए। विभिन्न सामग्रियों को जुटाना, दूध की व्यवस्था करना, ये सब नहीं करना चाहिए। ये सब करने से अपने को धोखा देना है। आने की बात नहीं सोचनी चाहिए। मुझे जब तपस्या के लिए छोड़ दिए थे, तब बहुत दिनों तक तो कुछ बोले ही नहीं। ऐसा ही करना होगा। जितने दिनों तक करना सम्भव हो, उतने दिन करके वापस आ जाना चाहिए।

– महाराज आपने तपस्या हेतु तैयारी की बात कही थी। कैसी तैयारी?

महाराज – मन को अन्तर्मुखी करना। मन की दौड़ा-दौड़ी, मानसिक चंचलता जब कुछ कम हो गई है, मन थोड़ा शान्त हुआ है, तब तपस्या में जाने से लाभ होता है। मन को अन्तर्मुखी करने का उपाय यही जप-ध्यान है। तैयारी, प्रस्तुति माने रुपया-पैसा, दूध आदि की व्यवस्था करना नहीं है। (सभी हँसते हैं।)

– आपने कहा था कि दूध की व्यवस्था नहीं करनी चाहिए।

महाराज – हाँ, नहीं करनी चाहिए।

– वास्तव में लम्बे समय तक बैठने का अभ्यास भी करने की आवश्यकता है।

महाराज – लम्बे समय तक बैठना नहीं, मन को वश में रखने के अभ्यास की आवश्यकता है।

प्रश्न – महाराज! शास्त्र-पाठ के प्रसंग में आपने कहा था – हम लोग उसी प्रकार की पुस्तकें पढ़ेंगे, जो हमारे साधन-भजन में उपयोगी होंगी। अब वास्तविक समस्या क्या होती है कि कदाचित् वैसी पुस्तकें पढ़ रहा हूँ, मान लीजिए गीता या उपनिषद पढ़ रहा हूँ। पढ़ते-पढ़ते एक स्थान पर न्याय, मीमांसा या व्याकरण का प्रसंग आ गया। तब उस विषय को समझने के लिये न्याय या मीमांसा की पुस्तक से देख लेने या किसी से सुन लेने से दो-तीन दिन समय चला जाता है। तब लगता है, अरे ये क्या कर रहा हूँ! इसके साथ मूल का कोई सम्बन्ध नहीं है। तब बहुत विभ्रान्त हो जाता हूँ, क्या करूँ, समझ नहीं पाता। क्या इन प्रसंगों की उपेक्षा करूँगा?

महाराज – हाँ, हमलोगों को उसकी आवश्यकता नहीं है। वह सब विद्वता के लिये है। सुनो, एक बार मुझे क्या हुआ था। तब मैं तपस्या कर रहा था। मेरे साथ एक छोटी-सी गीता थी, उसे पढ़ाता था। एक दिन एक श्लोक पढ़ रहा हूँ। पढ़ते-पढ़ते इच्छा हुई कि देखें श्रीधर स्वामी की टीका में क्या लिखा है? पुस्तक में पढ़ने लगा। कुछ समय बाद लगा – नहीं, मन तो दुष्टता कर रहा है। साथ-साथ, तुरन्त पुस्तक को बन्द कर रख दिया !

– न्याय-मीमांसा का प्रसंग तो दूर की बात है, टीका पढ़ना ही आपने बन्द कर दिया। किन्तु कहा जाता है – वेद-वाक्य का अर्थ समझने के लिए वेदांग का अर्थ समझना होगा।

महाराज – वह विद्वानों के लिये है।

– शास्त्र-पाठ के प्रसंग में आपने कहा था – जब तक सिद्धान्त निश्चित, पक्का नहीं हो जाता, तब तक करना चाहिए। इसका क्या अर्थ है?

महाराज – जितने दिनों तक सिद्धान्त संशयरहित हो रहा है, तब तक करना चाहिए।

– पढ़ने या सुनने के बाद सिद्धान्त का संशयहीन होना तो अभ्यास पर निर्भर करता है। तब क्या बार-बार पढ़ने की आवश्यकता है?

महाराज – अभ्यास ही करो न। पढ़ना अर्थात् – श्रोतव्य (श्रवण)। इसके बाद मन्तव्य (मनन) निदिध्यासितव्य (निदिध्यासन)। मनन करना होगा, चिन्तन करना होगा एवं निदिध्यासन करना होगा।

– तब तो अब पढ़ना नहीं होगा।

महाराज – नहीं, पढ़ना भी होगा, मनन, निदिध्यासन भी करना होगा। सब एक साथ चलेगा। तब पढ़ना अनुशीलन में आयेगा। ऐसा नहीं होता है कि पहले केवल पढ़ूँगा, उसके बाद केवल मनन करूँगा, उसके बाद केवल निदिध्यासन करूँगा। सब कुछ एक साथ करते जाना है।

– तब तो, ठाकुर की वह घटना कि पत्र पढ़कर फेंक देने के साथ ठीक मिल नहीं रहा है। सिद्धान्त जानने के बाद भी बार-बार पढ़ना पड़ रहा है।

महाराज – हाँ, वहाँ वस्तु क्या प्राप्त करनी है, वह स्थिर हो गया है। हमलोगों के सम्बन्ध में सिद्धान्त, विचार स्थिर करने के लिए पढ़ना है। वस्तु-प्राप्ति के बाद नहीं पढ़ने से भी चलेगा। **(क्रमशः)**

अपने बच्चों को तुम जो देते हो, तो क्या उसके बदले में उनसे कुछ माँगते हो? यह तो तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उनके लिए काम करो, और बस, वहीं पर बात समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार, किसी दूसरे पुरुष, किसी नगर अथवा देश के लिए तुम जो कुछ करो, उसके प्रति भी वैसा ही भाव रखो; उनसे किसी प्रकार के प्रतिदान की आशा न रखो। यदि तुम सदैव ऐसा ही भाव रख सको कि तुम केवल दाता ही हो, जो कुछ तुम देते हो, उससे तुम किसी प्रकार के प्रतिदान की आशा नहीं रखते, तो उस कर्म से तुम्हें किसी प्रकार की आसक्ति नहीं होगी।

– स्वामी विवेकानन्द

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२७)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

उस वर्ष १८९६ ई. के उत्सव में एक दूसरी भी बड़े मजे की बात हुई थी। प्रतिवर्ष कलकत्ते नगर से बहुत-से लोग महोत्सव के दिन दक्षिणेश्वर जाया करते थे। सभी श्रेणी की महिलाओं को टोलियाँ बनाकर ठाकुर के उत्सव में आते देखकर लोगों में चर्चा होने लगी कि यह महोत्सव भी कुछ 'द्वादश गोपाल' के मेले जैसा ही हो गया है । यह सुनकर स्वामी त्रिगुणातीत कुछ युवा भक्तों की सहायता से इसका निवारण करने को कटिबद्ध हुए।

यात्रियों के आवागमन हेतु हाटखोला घाट और दक्षिणेश्वर के बीच, प्रात: आठ बजे से रात दस बजे तक मेसर्स होर मिलर कम्पनी के कई स्टीमर चलते थे। गृही भक्त रामदयाल चक्रवर्ती उसी कम्पनी में ठेकेदारी करते थे। उपरोक्त व्यवस्था का भार भी उन्हीं पर रहता था।

त्रिगुणातीत ने उनसे कह दिया कि वे स्त्रियों को टिकट देने से मना कर दें। इसके बाद चितपुर रोड के जोड़ासाँको तक, थोड़े-थोड़े अन्तर पर रास्ते के दोनों तरफ लाल कपड़े लटकाकर उन पर बड़े-बड़े सफेद अक्षरों में लिखवा दिया गया – 'महिलाएँ दक्षिणेश्वर के महोत्सव में न जाएँ' और साथ ही स्वामी त्रिगुणातीत ने बड़े दिन के ही समान गेंदे की बड़ी-बड़ी मालाओं के साथ सन्तरे, पूरियाँ, जलेबियाँ आदि खाद्यपदार्थ तथा शाक-सब्जियों के साथ झाड़ू, टूटे हुए जूते, फूटे हुए हुक्के आदि बाँधकर सड़क के इस पार से उस पार तक लटकाने की व्यवस्था कर दी थी। (साथ ही) अपने सहकर्मियों के साथ मिलकर उन्होंने नगर

स्वामी त्रिगुणातीतानन्द

स्वामी अखण्डानन्द

में जगह-जगह दीवारों पर स्त्रियों को उत्सव में आने से मना करनेवाले प्लेकार्ड चिपका दिये थे। ऐसी व्यवस्था करने के बाद, वे लोग निश्चिन्त थे कि इस बार महिलाओं के दक्षिणेश्वर आने का मार्ग अवरुद्ध हो चुका है। महोत्सव आरम्भ होने के पहले, मैं मठ से दक्षिणेश्वर जाकर यह देख आया कि गंगातट पर नावों आदि से उतरने की कैसी व्यवस्था हो रही है।

महोत्सव के दिन, बड़े सबेरे, एक-दो लोगों को छोड़ हम सभी लोग मठ से दक्षिणेश्वर जा पहुँचे। काली-मन्दिर के दक्षिण की ओर के कमरों में महोत्सव का भण्डार बनाया गया था। उसी के दक्षिण की तरफ रात से ही पकाने का कार्य आरम्भ हो गया था। मैंने जाकर देखा, बूँदियाँ पहले ही बन चुकी है और घी की कड़ाही में मूंग के दाल को तलने के बाद उसे छानकर निकाला जा रहा है।

गिरीश बाबू आदि गृही भक्त एक-एक कर वहाँ पहुँचने लगे। आन्दूल के काली-कीर्तन करनेवाली टोली के लोग गैरिक वस्त्र पहने, शरीर को भस्माच्छादित किये, जटाजूट धारण किये – नाट्य-मन्दिर में बैठकर तानपुरे तथा मृदंग आदि के सुर मिला रहे थे। दल-की-दल स्त्रियों को आते देखकर त्रिगुणातीत ने अपने सहकर्मियों को मुख्य-द्वार बन्द करने का आदेश दिया। इधर महिलाओं की टोलियाँ स्टीमर से उतरकर दक्षिणेश्वर के मन्दिर-परिसर में इधर-उधर विचरण करने लगीं। यह देख उन्हें रोकनेवाले स्वयंसेवक किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। तब गिरीश बाबू के अनुरोध पर मुख्य-द्वार खोल दिया गया और टूटे हुए

बाँध से जलस्रोत के समान देखते-ही-देखते बड़ी संख्या में महिलाएँ मन्दिर-परिसर में प्रविष्ट हो गयीं। कुछ लोग कहने लगे बाधा डालने के कारण ही अन्य वर्षों की अपेक्षा इस बार महिलाओं की संख्या में इतनी वृद्धि हुई है।

मैं भण्डार के पास खड़ा था। तभी कुछ निर्धन लोगों ने आकर मुझसे कुछ खाने को माँगा। मैं दो बार उन्हें बूँदियाँ देने गया, परन्तु उन्हें देना नहीं हो सका। उन लोगों ने मेरे हाथ से सारी बूँदियाँ तो लूट ही ली, साथ ही टोकरी भी न जाने कहाँ उड़ गयी।

संकीर्तन की टोलियों ने गाना आरम्भ कर दिया। कीर्तन की ये टोलियाँ पहले ही आ गयी थीं। इनमें से प्रत्येक ने, ठाकुर के कमरे में रैलिंग से घिरे उनके तख्त के पास जाकर, अपने मुद्रित भजन का कागज ठाकुर के पास रखकर उन्हें प्रणाम किया था। इसके बाद वे बाहर आकर आम जनता को कीर्तन सुनाने बैठे थे।

कीर्तनियों के बीच वैष्णवचरण हमारे विशेष परिचित थे; क्योंकि ठाकुर जब भी बलराम बाबू के घर आते, उन्हें भी बुलवा लेते थे। उनके मुख से यह भजन सुनना ठाकुर को अत्यन्त प्रिय था –

दुर्गानाम जपो सदा रसना आमार ।
दुर्गमे श्रीदुर्गा बिना के करे निस्तार ।।

हम लोगों ने अनेकों बार वैष्णवचरण के मुख से इस भजन को सुना है।

कीर्तन के बाद सभी को कूठीबाड़ी में ले जाया गया। वहाँ पूरियों के ढेर लगे हुए थे, हलवे से भरे हुए बड़े-बड़े गमले थे, बड़ी-बड़ी टोकरियों में पान के बीड़े थे, शरबत से भरे अनेक घड़े थे, ढेर सारे हुक्के-चिलम थे और बहुत-सा तम्बाकू भी रखा हुआ था। सभी को हलवा, दो-दो पूरियाँ, शरबत, पान तथा तम्बाकू दिये गये।

उस बार के महोत्सव में, ज्यादा भीड़ होने के पहले ही 'महाबोधि सोसायटी' के श्रीयुत धर्मपाल, यशोहर के 'हिन्दू' पत्रिका के सम्पादक श्रीयुत जदुनाथ मजुमदार, श्री एन. घोष आदि ने आकर उत्सव को घूमकर देखा था। मुझे देखकर – जब श्रीयुत जदुनाथ मजुमदार तथा धर्मपाल ने इस खिलाने-पिलाने के साथ ही आध्यात्मिक खुराक भी देने की बात कही, तो मैं बोला, "काली-कीर्तन, हरि-कीर्तन आदि के द्वारा वही कार्य हो रहा है।"

इसके बाद मैं उन लोगों के साथ आम जनता के प्रसाद-ग्रहण का दृश्य देखने गया। सबको एक ही तरह का प्रसाद ग्रहण करते देखकर मुझे जो आनन्द हुआ, उसे शब्दों में नहीं व्यक्त किया जा सकता।

इस आलमबाजार में निवास के दिनों में ही एक बार स्वामी ब्रह्मानन्द तथा अभेदानन्द दार्जिलिंग गये। उन लोगों ने आन्दूल के वेणीबाबू की सहायता से ताजहाट के राजा गोविन्दलाल द्वारा प्रदत्त लुइस सेनेटोरियम में दो स्थानों की व्यवस्था हो जाने पर वहाँ महीने भर निवास किया था। तिब्बत से लौटे श्रीयुत शरत्चन्द्र दास ने मेरे मार्ग-व्यय आदि का भार लेते हुए मुझसे भी दार्जिलिंग जाने का अनुरोध किया, परन्तु मैं वहाँ नहीं गया।

आलमबाजार मठ में दर्शन तथा अनुभूति

पिछले छह-सात वर्षों के दौरान मुझे कोई उल्लेखनीय रोग आदि नहीं हुआ था। राजपुताना आदि स्थानों में मेरा स्वास्थ्य अच्छा ही था। आलमबाजार मठ में, मलेरिया रोग से आक्रान्त होकर मुझे कुछ दिनों के लिए बिस्तर पकड़ना पड़ा। संध्या के समय जब मैं सिरदर्द से अत्यन्त कातर हो उठता, तो सुबोधानन्द थोड़ी-सी कालीमिर्च पीसकर मेरे मस्तक पर प्रलेप के समान लगा देते। मिर्च की जलन से वह पीड़ा थोड़ी देर तक दबी रहती। इसके बाद, रात भर विचार करते हुए मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा, वह मेरे जीवन की एक स्मरणीय घटना होने के कारण, उसे यहाँ लिपिबद्ध करता हूँ। बड़े आश्चर्य की बात यह है कि उस रात के दौरान एक बार भी रोग की बात याद नहीं आयी।

उस रात, मेरे विचार का विषय कुछ इस प्रकार था – शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर – ये पाँच भाव हैं। जीव अपने-अपने स्वभाव के अनुसार, एक-एक भाव के अवलम्बन द्वारा भगवान के साथ एक जागतिक सम्बन्ध जोड़कर संसार में दिव्य सुख का आस्वादन करना चाहता है। कोई भी मायाबद्ध जीव को भक्त नहीं कहता। ये सारे भाव माया के परिमार्जित रूप मात्र हैं।

इसके बाद मैं सोचने लगा – स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर के परे जो 'आत्मा' है, वह आत्मा ही मैं हूँ – 'सोऽहम्'। इससे बढ़कर दूसरा कोई सिद्धान्त नहीं है। यही मेरा अभीष्ट होना चाहिए।

इसी प्रकार चिन्तन करते हुए रात के अन्तिम पहर में

थोड़ी-सी आँखें लगी, तभी देखा – सामने घुटनों के बल चलने की मुद्रा में सजीव लड्डू-गोपाल विराजमान हैं, मानो एक विशाल नीलकान्त मणि में खुदाई करके उन्हें गढ़ा गया हो। क्या ही सुन्दर सुडौल मूर्ति थी! गोपाल के

अंगों से छिटकती हुई ज्योति पूरे कमरे को आलोकित कर रही थी। उनके श्रीमुख से हास्य रेखा प्रस्फुटित हो रही थी। उनके घने काले केशों के ऊपर खिलते गुलाब तथा मोरपंख के साथ मोतियों की माला लिपटी हुई थी। मेरे भीतर से व्रजांगनाओं के समान दिव्य वसन-भूषण में सुशोभित माँ-यशोदा अपने दाहिने हाथ में खाद्यपदार्थ लिये – जैसे ठाकुर को, उनके रामलला के साथ गाने के सुर में बातें करते हुए सुनता था, ठीक वैसे ही गोपाल को खाद्यपदार्थ दिखाते हुए पुकारने लगीं, ''आ बेटा, मेरे गोपाल, यदुमणि, नीलमणि, आ रे दुखिया के आँचल की निधि!'' गोपाल के हँसते हुए घुटनों के बल थोड़ा अग्रसर होने पर, माँ हर्ष-विभोर हो जातीं और उनके थोड़ा पीछे हटते ही, वे रुँआसी होकर फिर बुलाने लगतीं। इसी प्रकार माँ-यशोदा के साथ नीलमणि गोपाल का खेल चल रहा था, तभी मैंने देखा – ठाकुर अपनी वही लाल किनारी की धोती का छोर कन्धे पर रखे, अपने दाहिने हाथ की तर्जनी उंगली से एक बार माँ-यशोदा और फिर गोपाल को दिखाते हुए कह रहे हैं, ''जरा देख तो, कैसा विलक्षण भाव है!'' मैं विस्मय से अभिभूत होकर बोल उठा, ''प्रभो, मुझे निर्वाण की जरूरत नहीं! अहा! इसी भाव को लेकर मैं सैकड़ों बार जन्म लेना चाहता हूँ।'' इतना कहकर मैं – ठाकुर, गोपाल और माँ-यशोदा को पकड़ने और जकड़ने गया, परन्तु तभी मेरी तन्द्रा भंग हो गयी।

देखा कि दिन काफी चढ़ गया है। मेरे सुख की रात बीत चुकी थी। उठकर देखा – रामकृष्णानन्द कटारी के पिछले भाग से ठाकुर के लिये दातून के अगले हिस्से को कूच रहे हैं। मैंने अपने दर्शन का सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। सुनकर वे बड़े आह्लादित हुए।

एक अन्य दिन की बात है। मठ के बाहरी सदर कमरे में अनेक लोग सोये हुए थे। मैं भी उन्हीं में एक था। गर्मी के कारण मुझे किसी भी प्रकार नींद नहीं आ रही थी। बाकी सभी लोग पसीने से तर-बतर सो रहे थे। पसीने से किसी-किसी का बिस्तर-चादर तक भीग रहा था। मैं उठ गया और एक बड़ा पंखा लेकर आनन्दपूर्वक सबको हवा करने लगा। हवा लगने से प्राय: सभी का पसीना सूख गया। सभी लोग करवटें बदलकर बड़े आराम से सो गये। बड़े आश्चर्य की बात है कि करीब आधे घण्टे के बाद मेरा तप्त शरीर भी शीतल हो गया। उस समय यह सोचकर मुझे अपार आनन्द होने लगा कि अन्य लोगों के सुख-दुख में स्वयं के सुख-दुख का अनुभव करने की थोड़ी क्षमता मुझमें आ गयी है। अभीष्ट-प्राप्ति की आशा में उस दिन मेरा हृदय अभिभूत हो गया था। **(क्रमश:)**

पृष्ठ १०५ का शेष भाग

है। जब ऐसा ध्यान किया जाता है, तब वह दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि होती है। दूसरी शब्दानुविद्ध अर्थात् शब्दों को आश्रय कर समाधि शब्दानुविद्ध कहलाती है। जैसे, 'मैं असंग, सच्चिदानन्द, स्वयंप्रकाश, द्वैतरहित आत्मा हूँ।' ऐसा ध्यान, समाधि, शब्दानुविद्ध है। हृदय की तरह बाह्य प्रदेश में भी ये दोनों सविकल्प समाधियाँ हो सकती हैं। इस प्रकार ये चार सविकल्प समाधियाँ हुईं। अपनी अनुभूति के रसावेश से दृश्य और शब्दादि की उपेक्षा करके वायुहीन स्थान में दीपक की भाँति स्थिति निर्विकल्प समाधि है (२६) इस रसास्वाद के बढ़ने पर इससे प्राप्त स्तब्धी भाव दूसरे प्रकार की निर्विकल्प समाधि है। (२८) इन छ: प्रकार की समाधियों में साधक को निरन्तर काल यापन करना चाहिए।

उपसंहार – यहाँ हमने अत्यन्त संक्षेप में योगशास्त्र एवं वेदान्त में उल्लिखित विभिन्न समाधियों का अतिसूक्ष्म परिचय मात्र दिया है। इनकी विस्तृत विवेचना पातंजल योगसूत्र की व्याख्याओं, स्वामी विवेकानन्द के राजयोग में, सारदानन्द कृत रामकृष्ण लीलाप्रसंग आदि ग्रन्थों में विद्यमान है। इच्छुक पाठक इन ग्रन्थों का अवलोकन करें। ○○○

गीता तत्त्व चिन्तन (३)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

अर्जुन! निष्कपट होने के कारण ज्ञान का अधिकारी तुझे ही मैंने देखा है। अर्जुन! तुम्हारे में तनिक भी असूया वृत्ति नहीं है। इसका मतलब क्या हुआ? पाँचों पाण्डवों में श्रेष्ठ अर्जुन है। कौरवों में श्रेष्ठ अर्जुन। सभी भक्तों में भी यह अर्जुन ही श्रेष्ठ है। इसका मतलब यही तो हुआ कि अर्जुन कितना बड़ा भक्त था! वह कितना ऋजु था। नाम भी है अर्जुन। अर्जुन वह होता है, जो ऋजु हो। जिसमें ऋजुता है, वह अर्जुन है। ऋजुता का मतलब होता है सरलता। जिसमें कपट नहीं है, वही ऋजु होता है और उसी का नाम है अर्जुन। जैसे भगवान श्रीरामकृष्ण कहते हैं – देखो, भगवान को पाने के लिए निष्कपटता चाहिए, एक बच्चे के समान सरलता चाहिए। जो निष्कपट है, जो सरल है, उसके लिए भगवान को पाना सहज है। परन्तु जो व्यक्ति कपटी है, वह भगवान को नहीं पा सकता। कहते हैं कि भले ही सुई के छेद में से हाथी निकल जाए, परन्तु कपटी व्यक्ति कभी भी भगवान को नहीं पा सकता। इसी सन्दर्भ में एक प्रसंग याद आ गया। मारीच सोने का मृग बनकर आया था। उसने सीता को लोभित किया। सीताजी ने जब श्रीराम से कहा कि इसकी चमड़ी बहुत सुन्दर होगी, इस मृग का वध कर आप मुझे लाकर दीजिए। प्रभु दौड़ते हैं, मारीच भागता है। मारीच दौड़ता चला जाता है,पर बीच-बीच में मुड़कर भी देख रहा है। प्रभु को देखता है और भागता है। प्रभु तीर धनुष पर चढ़ाकर उसके पीछे भाग रहे हैं। भागते-भागते प्रभु ने पूछा, नेत्रों ही नेत्रों में, मारीच तुम भाग क्यों रहे हो? जब मेरे पास यहाँ पर आये थे, तब फिर मुझे देख कर भाग क्यों रहे हो? मारीच ने भागते ही भागते नेत्रों से उत्तर दिया, महाराज आया तो था आपको पाने के लिए, पर जब मैं आपके आश्रम में पहुँचा और जब मुझको मालूम पड़ा कि आपको पाने की एक शर्त है और मैंने देखा, वह शर्त तो मुझसे निभेगी नहीं। इसीलिए महाराज मैं भाग कर जा रहा हूँ। क्यों? कौन-सी शर्त तुमने सुन ली? आपने कहा है न –

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।। ५/४३/५

यह आपने कहा है न! प्रभु ने हामी भरी। तो महाराज, एक तो मेरा मन निर्मल है नहीं। उसमें कितनी गन्दगी है, जिसे मैं आपको क्या बताऊँ? फिर आपने कहा कि मोहीं कपट छल छिद्र न भावा। मैं तो कपटता ही कपटता कर रहा हूँ। रूप जो लेकर आया हूँ, वह भी कपट रूप है। छल कर रहा हूँ। इसीलिए आपको पाने के लिए मेरे भीतर में कोई पात्रता नहीं है। मेरे जीवन में कपट ही कपट है। अत: मैंने सोचा कि अब प्रभु तो मुझे मिलने से रहे, इसीलिए मैं भाग रहा हूँ। प्रभु ने कहा, कि अच्छा भाग रहे हो, तो इस तरह मेरी ओर देखते हुए क्यों जा रहे हो? मारीच ने कहा कि मैं तो यह जानता हूँ कि मैं आपको प्राप्त नहीं कर सकता, परन्तु यह सोचता हूँ आप जो मेरे पीछे भागे आ रहे हैं, तो क्या आप मुझे पा सकेंगे या नहीं? इसीलिए मुड़-मुड़कर देख लेता हूँ। इस तरह मारीच की सरलता प्रकट हो गई। कपटी रूप लेकर आया था। परन्तु, प्रभु के सामने वह निष्कपट हो गया। तभी प्रभु ने बाण चला दिया। इस तरह मारीच का तेज प्रभु में समा गया। मारीच ने दिखा दिया कि वह प्रभु को प्राप्त हो गया। जहाँ जीवन में

निष्कपटता आयी, सारल्य आया, प्रभु को प्राप्त हो गया। यहाँ पर यही कहा जा रहा है कि यह जो असूया वृत्ति है, उसके द्वारा व्यक्ति कभी मुझे प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु तू कैसा है? तू असूया से रहित है। इसीलिए मैं तेरे प्रति कहूँगा, जो गुह्यतम है।

गोपनीय विद्या अनुभूतिगत विज्ञान है, वह उपदेशित नहीं हो सकती?

गुह्यतम का अर्थ क्या है? अत्यन्त गोपनीय। विद्या भी क्या गोपनीय होती है? एक विद्या गोपनीय होती है, जहाँ पर गुरु हमें मंत्र प्रदान करते हैं। यह मन्त्र विद्या गोपनीय होती है। जब गुरु मंत्र देते हैं, तब कहते हैं किसी से भी अपना मंत्र नहीं कहना। क्यों कहते हैं? क्योंकि वह अत्यन्त पवित्र है। पावन करने वाला मंत्र है। यदि उसका उच्चारण किसी दूसरे व्यक्ति के समक्ष कर दें, तो शायद हो सकता है, दूसरा व्यक्ति उसे ठीक ढंग से न समझे। उसकी आलोचना कर दे। इसीलिए यह जो ज्ञान है, वह मंत्र के समान पवित्र है। वह गुह्यतम है। पर क्योंकि तू असूया से रहित है, इस ज्ञान को पाने का अधिकारी है, इसलिए अपनी अनुभूति के साथ मिलाकर ज्ञान और विज्ञान सहित तुझे कहूँगा।। आप लोगों को श्रीरामकृष्ण का वह चुटकुला सुनाया था। विशेष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। इसे ऐसे समझ लें। जिस ज्ञान को अपनी अनुभूति में उतार लिया जाय, वह हो जाता है विज्ञान। अर्थात् विशेष रूप से उसका अनुभव कर लेना। शंकराचार्य ने गीता भाष्य में टीका लिखते समय यही कहा है – **विज्ञानं स्वानुभवसंयुक्तम् –** अनुभूति के साथ। एक ज्ञान मुझे मिला पढ़कर या गुरुमुख से श्रवण कर। उस ज्ञान पर मैंने चिन्तन करना आरम्भ किया। उसे अपने जीवन में उतार लिया। उसकी अनुभूति कर ली। तो वह विज्ञान बन जाता है। श्रीरामकृष्ण ज्ञान, विज्ञान और अज्ञान के सम्बन्ध में कहा करते थे – किसी ने दूध के विषय में पढ़ा है या दूध के सम्बन्ध में सुना है। किसी ने दूध को देखा है। किसी ने दूध को चखा है। जिसने दूध के सम्बन्ध में पढ़कर या सुनकर जाना है, वह है अज्ञान। कभी-कभी वह विपरीत ज्ञान का कारण बनता है। जिसने दूध को देखा है, वह है ज्ञान। और जिसने दूध को चखा है वह है विज्ञान। जिसने दूध को चखा है, वह कभी गलती नहीं करेगा। जिसने दूध के सम्बन्ध में सुना है या पढ़ा है, वह गलती करेगा। वह दूध के बारे में ठीक नहीं जानता। उलटा ज्ञान उसे हो सकता है। यहाँ एक अंधा भिखारी एक आँख वाले मित्र से कहता है कि यह तो बड़ी टेढ़ी खीर है। तुमने कैसे खायी होगी? तो श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि पढ़-सुनकर हम जो ज्ञान पाते हैं, वह केवल अज्ञान ही नहीं है, बल्कि विपरीत ज्ञान भी है। अच्छा जिसने दूध को देखा है, वह भी गलती कर सकता है। तीन कटोरियों में हम तीन चीजें रख दें। एक में मठा, एक में खड़िये का घोल और तीसरे में दूध रख दें। और जिसने दूध को देखा है उससे पूछें कि बताओ तो इन कटोरियों में से किसमें दूध है? वह नहीं बता सकेगा। क्योंकि तीनों एक ही समान दिखाई देते हैं। परन्तु जिसने दूध को चखा है वह चखकर बता देगा। यह है विज्ञान। विज्ञानवाला जो व्यक्ति है, वह गलती नहीं कर सकेगा। यहाँ पर कहते हैं – ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् – अर्जुन! जिसको जानकर तू अशुभ को पार कर जायेगा। ऐसा मैं तुझे बताऊँगा। ऐसे निष्कपट अर्जुन के समक्ष श्रीकृष्ण उपदेश करते हैं – **(क्रमशः)**

भगवद्गीता में हम बार-बार पढ़ते हैं कि हमें निरन्तर कर्म करते रहना चाहिए। कर्म स्वभावतः ही शुभ-अशुभ से निर्मित होता है। हम ऐसे कोई भी कर्म नहीं कर सकते, जिससे कहीं कुछ शुभ न हो; और ऐसा भी कोई कर्म नहीं है, जिससे कहीं न कहीं कुछ अशुभ न हो। प्रत्येक कर्म अनिवार्य रूप से गुणदोष से मिश्रित रहता है। परन्तु फिर भी हमें सतत कर्म करते रहने का ही आदेश है। शुभ और अशुभ, दोनों के अपने अलग-अलग परिणाम होंगे, वे भी कर्म की उत्पत्ति करेंगे। शुभ कर्मों का फल शुभ होगा और अशुभ कर्मों का फल अशुभ। परन्तु शुभ और अशुभ, दोनों ही आत्मा के लिए बन्धनस्वरूप हैं। इस सम्बन्ध में गीता का कथन है कि यदि हम अपने कर्मों में आसक्त न हों, तो हमारी आत्मा पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं पड़ सकता।

–स्वामी विवेकानन्द

साधुओं के पावन प्रसंग (१५)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

एक दिन वार्तालाप के दौरान महाराज ने कहा "जब मैं महासचिव के पद पर था, तब मेरे पास एक रेफ्रीजरेटर था, जिसमें फल, मिठाई इत्यादि रखता था। किन्तु इस मकान में आने के समय उसको नहीं लाया। भक्तगण मिठाइयाँ लाते हैं, लेकिन गर्मी के कारण खराब हो जाती हैं।" मैंने कहा, "महाराज, मैं आपको उपहार में एक रेफ्रीजरेटर दूँगा।" "तुम्हारे पास रुपया कहाँ से आयेगा?" "इसके लिए आपको नहीं सोचना होगा। मेरे पास रुपया है। भक्तलोग मेरी तीर्थयात्रा के लिए पर्याप्त रुपये दिये हैं।" महाराज मन-प्राण से अपरिग्रही थे। अन्त में मेरे बहुत अनुनय-विनय करने के बाद वे सहमत हुए। उसके बाद उन्होंने कहा, "तुम मठ कार्यालय में स्वामी निर्लिप्तानन्द के पास जाओ और इस बारे में उसके साथ विचार-विमर्श करो।" महाराज संघ के अनुशासन और विधि-विधान को मानकर चलते थे। मैं उसी समय मठ कार्यालय में स्वामी निर्लिप्तानन्द महाराज के पास गया तथा महाराज के लिए एक रेफ्रीजरेटर खरीदने की व्यवस्था की। इससे महाराज बहुत आनन्दित हुए।

स्वामी गम्भीरानन्द

इस देश (अमेरिका) के भक्तलोग क्रिसमस के समय साधुओं को कपड़ा, स्वेटर, रुपया इत्यादि उपहार में देते हैं। मैं उन्हीं रुपयों में से गम्भीर महाराज के व्यक्तिगत खर्च हेतु प्रतिवर्ष भेजा करता था। उन्होंने लिखा था, "मुझे कोई विशेष अभाव नहीं है। तुम अपनी विधवा माँ के लिए कुछ रुपया भेजा करो।" मैंने लिखा, "महाराज, मैं जितना रुपया भेजता हूँ, उससे आपका भोजन बनानेवाले लड़के का वेतन दिया जा सकेगा।" गम्भीर महाराज मठ का रुपया अपने लिए व्यय करना नहीं चाहते थे। वे अपना व्यक्तिगत खर्च स्वयं ही वहन करने का प्रयास करते तथा अत्यधिक आवश्यकता पड़ने पर भी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते थे। इस प्रसंग में अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति जे.एफ.केनेडी की एक विख्यात उक्ति स्मरण हो रही है "Ask not what your country do for you, but what you can do for your country.'(अर्थात् यह नहीं पूछो कि तुम्हारा देश तुम्हारे लिए क्या करता है, बल्कि तुम अपने देश के लिए क्या कर सकते हो।) गम्भीर महाराज ने अपना शरीर-मन-प्राण सब कुछ रामकृष्ण संघ को दान कर दिया।

परवर्तीकाल में जब वे संघाध्यक्ष हुए, तब उन्होंने लिखा था, अब तुमको रुपया भेजने की आवश्यकता नहीं है। इन दिनों भक्तों द्वारा प्रदत्त दान से ही चल जाता है। फिर भी मैं रुपया भेजा करता था। १९८६ में जब मैं मठ गया, तब महाराज ने कहा, "सुनो, यह बेलूड़ मठ है। यहाँ पर सभी कुछ पाया जाता है। केवल थोड़ी-सी आवाज करनी होगी। तुमको कोई भी आवश्यकता होने पर बतलाना।" उन्होंने और भी कहा था, "तुम धोती, चादर और कमीज का कपड़ा नहीं खरीदना। दीक्षा के समय मुझे बहुत मिलता है। तुम यहीं से लेना। सिल्क का कपड़ा उस देश में ले जाना। इस देश (भारत) में साधुओं के सिल्क कपड़ा पहनने पर लोग निन्दा करते हैं। किन्तु उस देश के लोग इसके बारे में अधिक नहीं सोचते।" उसके बाद महाराज ने सेवक को मेरी आवश्यकतानुसार सब देने को कहा, जिससे मैं ठाकुर का रुपया व्यर्थ व्यय न करूँ।

अमेरिका जाने के बाद मैं कई बार भारत आया था। महाराज मेरे साथ अनेक विषयों – आध्यात्मिक प्रसंग, पुराने साधुओं की स्मृतियाँ, इत्यादि पर लम्बे समय तक वार्तालाप करते थे। इसके अतिरिक्त मेरे पत्रों के कई विषयों के उत्तर दिया करते थे। मनुष्य चला जाता है, लेकिन उसकी केवल स्मृति रह जाती है। पूज्य गम्भीर महाराज की स्मृतियाँ मेरे लिए प्रेरक एवं मधुर हैं।

२

(यह द्वितीय भाग, 'स्वामी गम्भीरानन्द : एक महाजीवनेर कथा' की भूमिका के रूप में लिखा गया है। मैं इस ग्रन्थ की भूमि या क्षेत्र, का अर्थात् कैसी है, इसे पाठकों की जानकारी के लिए लिख रहा हूँ। गम्भीर महाराज ने तीस वर्ष पूर्व शरीर-त्याग किया, अभी भी साधु-भक्तों के मुख से उनके आदर्श जीवन के बारे में सुनता रहता हूँ। शास्त्र कहते हैं –

चलच्चित्तं चलद्वित्तं चलज्जीवनयौवनम्।
चलाचलमिदं सर्वं कीर्तियशं स जीवति।।

– मन, धन, जीवन, यौवन सभी चंचल है। किन्तु कीर्तिमान व्यक्ति मर कर भी अमर रहते हैं। स्वामी गम्भीरानन्द महाराज का दिव्य जीवन एवं कीर्ति रामकृष्ण संघ में उनको अमर करके रखा है।)

जो अब देहमुक्त तथा नाम-रूप के परे हैं, उनको नाम-रूप की सीमा में खींचकर, उनका गुणगान करके, उनको सीमित करना शोभनीय नहीं तथा उचित भी नहीं हैं। अत: मानव मन माया-ममता, श्रद्धा-प्रेम के डोर से बँधा हुआ है। इसीलिए मनुष्य अपने प्रियजनों को स्मृति की डोर से बाँधकर रखना चाहता है।

मनुष्य मननशील है, मनन का अधिकारी है, मनुष्य के मानसपटल पर वृत्ति-प्रवाह चलता रहता है, ये वृत्तियाँ चित्त पर संस्कार छोड़ जाती हैं और उसी संस्कार से पुन: वृत्ति का उदय होता रहता है। योग के अनुसार इस चित्तवृत्ति को स्मृति कहते हैं। इसी स्मृति का अवलम्बन कर मनुष्य हँसता-रोता हुआ जीवन-पथ पर अग्रसर होता रहता है। संस्कार के तारतम्यता के अनुसार स्मृति भी न्यूनाधिक्य होती है। गहरे संस्कार से स्पष्ट स्मृति का उदय और हल्के संस्कार से अस्पष्ट स्मृति का उदय होता है। स्वामी गम्भीरानन्द महाराज का यह स्मारक ग्रन्थ (स्वामी गम्भीरानन्द : एक महाजीवनेर कथा) अनेक साधु-भक्तों का मूल्यवान स्मृति संग्रह है।

इतिहास सदैव प्रवाहमान है, इसकी गति कभी रुकती नहीं। इतिहास का जैसे अतीत है, वैसे ही वर्तमान तथा भविष्य भी है। इतिहास कभी-भी समान रूप से नहीं चलता, इसका प्रवाह उतार-चढ़ाव के मध्य में से गतिशील रहता है। रोम तथा मुगल साम्राज्य का इतिहास, बौद्ध तथा ईसाई धर्म का इतिहास, इसका प्रमाण है। रामकृष्ण संघ का इतिहास – श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द तथा रामकृष्ण संघ के संन्यासी एवं गृहस्थ शिष्यों तक ही सीमित नहीं है। स्वामीजी के शब्दों में इस संघ की गति '१५०० वर्षों' तक निर्विघ्न रूप से चलती रहेगी। यदि कोई यह सोचता है कि रामकृष्ण एवं उनके पार्षदों के जीवन तथा कार्य में ही रामकृष्ण संघ का इतिहास समाप्त हो जाता है, तो वह बहुत बड़ी भूल होगी। श्रीरामकृष्ण के अन्तिम पार्षद स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज के बाद स्वामी शुद्धानन्द, स्वामी विरजानन्द, स्वामी शंकरानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द, स्वामी माधवानन्द, स्वामी वीरेश्वरानन्द, स्वामी गम्भीरानन्द, स्वामी भूतेशानन्द, स्वामी रंगनाथानन्द, स्वामी गहनानन्द, स्वामी आत्मस्थानन्द संघाध्यक्ष हुए। इन सभी संघाध्यक्ष महाराजों का जीवन एवं कार्य का इतिहास वास्तव में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी है। इन ज्ञानी-गुणी संन्यासियों ने रामकृष्ण संघ की परम्परा और आध्यात्मिक प्रवाह को हृष्ट-पुष्ट किया। इतिहास के पन्नों में यदि इनका नाम नहीं लिखा जाता है, तो यह महान क्षति होगी।

स्वामी शुद्धानन्द महाराज के जीवन और कार्य के सम्बन्ध में अभी कितने लोग जानते है? वे स्वामी विवेकानन्द की अँग्रेजी पुस्तक 'कम्पलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द' का बांगला में 'स्वामी विवेकानन्द वानी औ रचना' अनुवाद करके चिरस्मरणीय हो गये। स्वामी विरजानन्द जी महाराज ने स्वामीजी की अँग्रेजी जीवनी तथा कार्य का जिस प्रकार सामग्री एकत्र किया था, उसकी कोई तुलना नहीं है। परवर्ती काल के स्वामी शंकरानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द, स्वामी माधवानन्द, स्वामी वीरेश्वरानन्द, स्वामी गम्भीरानन्द, स्वामी भूतेशानन्द आदि प्रमुख विख्यात् संन्यासियों का रामकृष्ण संघ में उन लोगों का योगदान के सम्बन्ध में कहीं लिपिबद्ध है, ऐसा मुझे ज्ञात नहीं। इन महान संन्यासियों ने दधीचि के समान तिल-तिल करके अपने जीवन का दान कर रामकृष्ण संघ को पुष्ट, दृढ़ और सुन्दर किया है। स्वामी विरजानन्द महाराज के डायरी का अवलम्बन करके स्वामी श्रद्धानन्द जी ने 'अतितेर स्मृति' लिखा है, यह एक ऐतिहासिक प्रमाण है। परवर्तीकाल में स्वामी माधवानन्द तथा स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज का स्मृति ग्रन्थ, भक्तों द्वारा संग्रहित और प्रकाशित देखने को मिलता है। स्वामी गम्भीरानन्द के इस स्मृति-ग्रन्थ के लिए मैं मन-प्राण से शुभेच्छा व्यक्त करता हूँ। इसमें उनके व्यक्तित्व तथा चरित्र का हमें किंचित् आश्वादन मिलता है। उनके शरीर त्याग के कुछ समय बाद ही यदि इस ग्रन्थ का कार्य आरम्भ होता, तो उनके समकालीन अनेक साधुओं तथा भक्तों की बहुमूल्य स्मृतियाँ हमें मिल जातीं। **(क्रमश:)**

दृग्-दृश्य-विवेकः (१०)

(यह ४६ श्लोकों का 'दृग्-दृश्य-विवेक' नामक प्रकरण ग्रन्थ 'वाक्य-सुधा' नाम से भी परिचित है। इसमें मुख्यत: 'दृश्य' के रूप में जीव-जगत् की और 'द्रष्टा' के रूप में 'आत्मा' या 'ब्रह्म' पर; और साथ ही 'सविकल्प' तथा 'निर्विकल्प' समाधियों पर भी चर्चा की गयी है। ग्रन्थ छोटा, परन्तु तत्त्वबोध की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। ज्ञातव्य है कि इसके १३वें से ३१वें श्लोकों के बीच के आनेवाले १६ श्लोक 'सरस्वती-रहस्य-उपनिषद्' में भी प्राप्त होते हैं। मूल संस्कृत से इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

जीव-जगत् व्यावहारिक सत्ता मात्र

जीव तथा जगत् – दोनों ही माया से उत्पन्न हुए हैं, अत: जब तक जीव अज्ञान में स्थित रहेगा, तब तक इनका भी अस्तित्व बना रहेगा –

अनादि-कालमारभ्य मोक्षात् पूर्वमिदं द्वयम् ।
व्यवहारे स्थितं तस्मादुभयं व्यावहारिकम् ।।३७।।

अन्वयार्थ – (जीव तथा जगत्) **इदं द्वयं** ये दोनों – **अनादि-कालम्-आरभ्य** अनादि काल से आरम्भ होकर **मोक्षात् पूर्वं** मोक्ष होने के पूर्व तक **व्यवहारे स्थितं** (केवल) व्यावहारिक सत्ता रखते हैं, **तस्मात्** अत: **उभयं** दोनों **व्यावहारिकं** (स्वरूप से) व्यावहारिक (मात्र) है।

भावार्थ – (जीव तथा जगत्) ये दोनों – अनादि काल से आरम्भ होकर मोक्ष होने के पूर्व तक (केवल) व्यावहारिक सत्ता रखते हैं, अत: दोनों (स्वरूप से) व्यावहारिक (मात्र) है, (वास्तविक नहीं)।

जीव-जगत् की विभिन्न अवस्थाएँ

यह शंका उत्पन्न होती है कि यदि जीव-जगत् चिर काल से अस्तित्व में हैं और जीव की मुक्ति होने तक बने रहेंगे, तो फिर शास्त्र में निबद्ध जगत् की 'सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय' और जीव की 'जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति' नामक अवस्थाओं की कैसे व्याख्या होगी? अब यही बता रहे हैं –

चिदाभासस्थिता निद्रा विक्षेपावृतिरूपिणी ।
आवृत्य जीवजगतो पूर्वे नूत्ने तु कल्पयेत् ।।३८।।

अन्वयार्थ – **चिदाभास-स्थिता** चैतन्य के आभास में स्थित **विक्षेप-आवृति-रूपिणी** आवरण तथा विक्षेप रूपी शक्तियाँ – **निद्रा** सुषुप्ति (के द्वारा) **पूर्वे** पहले के, **जीव-जगतः** जीव-जगत् को **आवृत्य** आवृत्त करके; (स्वप्न में) **नूत्ने** नवीन (प्रातिभासिक) **तु कल्पयेत्** (जीव-जगत् का) विक्षेप अर्थात् सृष्टि करती है।

भावार्थ – चैतन्य के आभास में स्थित 'आवरण' तथा 'विक्षेप' रूपी शक्तियाँ – सुषुप्ति (के द्वारा) पहले के, जीव-जगत् को आवृत्त करके; (स्वप्न में) नवीन (प्रातिभासिक जीव-जगत् का) विक्षेप अर्थात् सृष्टि करती है।

स्वप्न के जीव-जगत्

स्वप्न में प्रतिभात होनेवाले जीव तथा जगत् क्यों काल्पनिक या भ्रान्ति-मात्र हैं –

प्रतीतिकाल एवैते स्थितत्वात् प्रातिभासिके ।
न हि स्वप्नप्रबुद्धस्य पुनः स्वप्ने स्थितिस्तयोः ।।३९।।

अन्वयार्थ – **एते** ये दोनों (स्वप्न के जीव-जगत्) **प्रतीतिकाले** अनुभूति के दौरान **एव** ही **स्थितत्वात्** स्थित रहते हैं, इसीलिये (इन्हें) **प्रातिभासिके** प्रातिभासिक (**उच्येते** कहते हैं), **हि** क्योंकि **स्वप्न-प्रबुद्धस्य** सपने से जागे हुए व्यक्ति का **स्वप्ने** (नये) सपने में **पुनः** फिर **तयोः** उन दोनों (जीव-जगत्) की **स्थितिः** स्थिति **न** नहीं (देखी जाती)।

भावार्थ – ये दोनों (स्वप्न के जीव-जगत्) अनुभूति के दौरान ही स्थित रहते हैं, इसीलिये (इन दोनों को) प्रातिभासिक (कहते हैं), क्योंकि सपने से जागे हुए व्यक्ति का (नये) सपने में उन दोनों (जीव-जगत्) की स्थिति फिर नहीं (देखी जाती)।

ईश्वर और जीव का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा चुम्बक और लोहे का। तब फिर ईश्वर जीव को आकर्षित क्यों नहीं करते? जिस प्रकार अत्यधिक कीचड़ में लिपटा हुआ लोहा चुम्बक के द्वारा आकर्षित नहीं होता, उसी प्रकार अत्यधिक माया में लिप्त जीव ईश्वर के आकर्षण का अनुभव नहीं करता। किन्तु जिस प्रकार पानी से कीचड़ के धुल जाने पर लोहा चुम्बक की ओर खींचने लगता है उसी प्रकार अविरत प्रार्थना तथा पश्चाताप के अश्रुओं द्वारा संसारबन्धन में डालनेवाली माया का वह कीचड़ जब धुल जाता है, तो जीव शीघ्र ही ईश्वर की ओर आकर्षित होने लगता है।

– श्रीरामकृष्ण देव

बालक के समान शुद्ध बनो

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

बालक के समान शुद्ध, पवित्र मन रहने से ही भगवान का दर्शन होता है, इसलिए हमारा मन शुद्ध होना चाहिए। हमारा आध्यात्मिक विकास क्यों नहीं होता? हम इतना जप-तप करते हैं, सब कुछ करके भी हमारे मन में संसारी भाव रहते हैं, हमारे मन में अशुद्धियाँ हैं, इसलिए हमारा कुछ नहीं होता। हमें जीवन में विचारपूर्वक जीने की आदत डालनी चाहिए। भक्त के जीवन से लोक शिक्षा मिलती है। दूसरे लोगों से भक्त का जीवन अलग होना चाहिए। इसलिए उसे विचारपूर्वक जीवन-यापन करना चाहिए। हम साधक हैं, भक्त हैं, तो जब हमारे जीवन में त्याग-तपस्या और भक्ति सब कुछ आयेगी, तब हमारा जीवन बनेगा, हम स्वयं धन्य होंगे और लोगों का जीवन भी धन्य होगा।

वास्तव में हमारी वृत्ति क्या है? हम जीवन में चाहते क्या हैं? हमारा उद्देश्य क्या है? उद्देश्य पवित्र होगा, तो मन शुद्ध होगा, तो परिवार भी शुद्ध, पवित्र होगा? जब कोई अपने पति, पुत्र, परिवार के मंगल के लिए भगवान से प्रार्थना करता है, तो भगवान प्रार्थना सुनते हैं और मंगल करते हैं।

कोई भी व्यक्ति भगवत्प्राप्ति के लिए अयोग्य नहीं है। जब उसके जीवन में भगवान की आवश्यकता का बोध होगा, अब तक भगवत्पथ पर नहीं चलने का पश्चाताप होगा, तब वह भगवान के पास जायेगा। हमारे मन में जो संसार की दुर्बलतायें हैं, उसको दूर करने के लिये प्रयत्नशील होंगे, तो ठाकुर भी कृपा कर हमें सही मार्ग पर ले जाने में सहायता करेंगे। ईश्वर की कृपा से जागतिक वासनायें हमें पीड़ित नहीं कर सकेंगी। हम ईश्वर की ओर तीव्र गति से आगे बढ़ेंगे। भगवान की कृपा का बोध होने पर हममें शरणागति का भाव आएगा।

भगवान का आश्वासन है कि मेरी शरण में आ जाने से मैं अपने भक्तों को सभी पापों से मुक्त कर देता हूँ। अगर हम भगवान की शरण में जायेंगे, तो अपने भक्तों का सारा दायित्व भगवान स्वयं ही ले लेते हैं। वे हमेशा हमारा रक्षण करते हैं। लोगों से गलती यह होती है कि वे ईश्वर को छोड़कर संसार की झंझट में पड़ते हैं। हमारे जीवन में जो भी दुख होता है, जो भी पीड़ा होती है, वह हमारे कल्याण के लिये ही है। इसलिए हम लोगों के लिए एक ही उपाय है कि हम उनके शरणागत होकर रहें।

दूसरी बात कि साधक के जीवन में, भक्त के व्यवहार में विनम्रता होनी चाहिए। जब तक विनम्रता नहीं आयेगी, तब तक आध्यात्मिक जीवन तो दूर की बात लौकिक जीवन में भी हम आगे नहीं बढ़ सकते। साधक को सहनशील होना चाहिए। उसे किसी भी व्यक्ति से कोई झगड़ा नहीं करना है। किसी के प्रति बैर का भाव नहीं रखना है। राग-द्वेषरहित, सहनशील भक्त को भगवान की कृपा से परम सुख की प्राप्ति होगी।

सांसारिक सुख तात्कालिक और अस्थायी होता है। आध्यात्मिक सुख हमेशा के लिए रहता है। आध्यात्मिक विकास के लिए मन को संयमित रखना है। अपनी इन्द्रियों पर संयम, अपनी इच्छा-वासनाओं पर संयम, अपने आप पर विजय, यही जीवन का उद्देश्य है। मन जो कहता है, उसे अपने विवेक से विचार कर, अपने जीवन-लक्ष्य में सहायक हो, तब उसे करना है, नहीं, तो नहीं करना है। हमें संयमित, ईश्वरमय, आदर्श जीवन बीताना है।

जब आप आदर्शमय अच्छा जीवन जीते हैं, तो वह आपके बच्चों, परिवार और समाज के लिए प्रेरणादायक बन जाता है। जीवन का एक परम सत्य है कि संसार में सब वस्तु पुरानी हो जाती हैं, उसमें रस नहीं रहता है, लेकिन भगवान की भक्ति सदा सरस और नित्य नवीन रहती है।

माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वे बचपन में ही अपने बच्चों को कर्तव्यपरायणता, भगवत्प्रेम और जीवन का आदर्श सिखाएँ। बच्चों को भी यह ध्यान रखना है कि माता-पिता ने उन्हें जन्म दिया, पाल-पोसकर बड़ा किया, इसीलिए अपने माता-पिता की सेवा करनी चाहिए। यदि वे माता-पिता की सेवा नहीं करेंगे, तो वह पाप है। उन्हें भगवान कभी क्षमा नहीं करेंगे। वे बूढ़े माता-पिता की प्रेम से सेवा कर आशीर्वाद लें। इससे उनके विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। ○○○

रामकृष्ण मिशन संचालन समिति की संक्षिप्त रिपोर्ट – वर्ष २०१८-१९

(मुख्य कार्यालय) पो. बेलूड़ मठ, जिला-हावड़ा, पश्चिम बंगाल - ६११ २०२

ई-मेल : rkmhq@belurmath.org, **वेबसाइट** : www.belurmath.org

रामकृष्ण मिशन की ११०वीं वार्षिक साधारण सभा १५ दिसम्बर, २०१९ को शाम ३.३० बजे बेलूड़ मठ में आयोजित की गयी। इस सभा में प्रस्तुत की गयी संक्षिप्त रिपोर्ट निम्नलिखित है –

रामकृष्ण मिशन को सम्मान प्राप्त हुए

१. भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा रामकृष्ण मिशन, दक्षिण अफ्रीका में उसके उत्कृष्ट सेवा कार्य के लिये **'प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार'** प्रदान किया गया।

२. रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द शिक्षण अनुसंधान संस्थान (मानित विश्वविद्यालय बेलूड़ को राष्ट्रीय मूल्यांकन और मान्यता परिषद के द्वारा **'उच्चतम श्रेणी A++ पुरस्कार'** प्रदान किया गया। ३. विद्यालयीन शिक्षा विभाग, पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा पुरुलिया विद्यापीठ को **'श्रेष्ठ विद्यालय पुरस्कार'** प्रदान किया गया।

रामकृष्ण मठ और मिशन के प्रमुख केन्द्र तथा अनेक शाखा केन्द्रों द्वारा स्वामी विवेकानन्द के विश्वधर्म महासभा व्याख्यान, शिकागो (अमेरिका) की १२५वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये गये, जिनमें निबंध-लेखन, स्वर-पाठ तथा अन्य सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं में १.१४ लाख विद्यार्थियों ने भाग लिया। हमारे केन्द्रों में भी युवकों तथा भक्तों के लिए ८८ सम्मेलनों का आयोजन किया गया, जिसमें ३४,००० लोगों ने भाग लिया। अमेरिका के कुछ केन्द्रों तथा अन्य देशों में भी साधारण सभा, व्याख्यान और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये।

रामकृष्ण मिशन के नई शाखाएँ निम्नलिखित स्थानों पर प्रारम्भ की गईं –

१. बिलासपुर (छत्तीसगढ़) २. कटक (उड़ीसा) ३. यादाद्री भुवनागिरी (तेलंगाना)। रामकृष्ण मिशन मुख्यालय की देखरेख में श्यामसायेर, वर्धमान (पश्चिम बंगाल) में सितम्बर २०१८ को उपशाखा केन्द्र के रूप में आरम्भ किया गया। राजकोट केन्द्र की उपशाखा अहमदाबाद में प्रारम्भ हुई। दक्षिण अफ्रीका में फिनिक्स आश्रम को रामकृष्ण मिशन के शाखा-केन्द्र के रूप में सम्मिलित किया गया तथा जोहान्सबर्ग आश्रम को फिनिक्स आश्रम का उपशाखा बनाया गया। डबलीन (आयरलैण्ड) में रामकृष्ण मठ का एक नया केन्द्र प्रारम्भ हुआ।

शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित नये विकास कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं

१. पीयरलेश कौशल परिषद के सहयोग से कौशल विकास परियोजना के अन्तर्गत हमारे केन्द्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण (पाठ्यक्रम) को सुदृढ़ किया गया। २. वराहनगर मिशन ने अपने विद्यालय में उच्च माध्यमिक विभाग प्रारम्भ किया। ३. गड़बेता केन्द्र ने (अग्रेजी माध्यम) प्राथमिक विद्यालय प्रारम्भ किया। ४. मालदा केन्द्र ने अपने विद्यालय में अंग्रेजी माध्यम से एक अलग विभाग प्रारम्भ किया। ५. लमडंग केन्द्र में प्राथमिक विद्यालय आरम्भ हुआ।

चिकित्सा के क्षेत्र में हुए नये विकास कार्य हुए

१. देहरादून केन्द्र द्वारा आर्त विशिष्ट नेत्र देखरेख प्रारम्भ किया गया। २. ईटानगर केन्द्र द्वारा दो शल्य-क्रिया कक्ष बढ़ाया गया। ३. कनखल केन्द्र द्वारा आठ बिस्तर वाली उच्च निर्भरता इकाई प्रारम्भ की गई। ४. लखनऊ केन्द्र द्वारा एक पूर्ण सुसज्जित गहन देखभाला प्रयोगशाला की स्थापना की गयी। ५. सेवा प्रतिष्ठान केन्द्र द्वारा एक हृदय-रोग वार्ड निर्मित किया एवं एक अंतस्त्राविकी विभाग प्रारम्भ किया गया। ६. विशाखापटनम् केन्द्र द्वारा वाक् चिकित्सा इकाई, मस्तिष्क पक्षाघात क्लिनिक और बच्चों के लिए अध्ययन केन्द्र स्थापित किया गया।

ग्रामीण विकास के क्षेत्र में आरम्भ की गयी नई परियोजनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं

१. खेतड़ी केन्द्र द्वारा स्थानीय महिलाओं के लिए हस्तशिल्प प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना की गयी। २. मालदा केन्द्र ने मालदा जिले के दो गाँवों के प्राथमिक विद्यालयों में मध्यान्ह भोजन वितरण

हेतु शेड निर्मित किया। ३. राँची मोराबादी केन्द्र ने ६९६९ हेक्टेयर भूमि पर जल-संरक्षण एवं उन्नत बीज-उत्पादन के लिये एक ग्रामीण-बीज कार्यक्रम आरम्भ किया, साथ ही अंगारा विकास खण्ड के अन्तर्गत नवागढ़ ग्राम पंचायत को आदर्श आदिवासी ग्राम पंचायत के रूप में विकसित करने हेतु गोद भी लिया। ४. सारगाछी केन्द्र द्वारा आधुनिक कृषि-तकनीकि के माध्यम से किसानों के लाभ हेतु कृषि-विज्ञान केन्द्र आरम्भ किया गया।

हमारे कई केन्द्रों ने 'स्वच्छ भारत अभियान' को आगे बढ़ाते हुए स्वच्छता-अभियान एवं जागरूकता शिविर का आयोजन किया, जिनमें निम्नलिखित केन्द्र विशेष उल्लेखनीय हैं

१. मंगलुरु केन्द्र द्वारा (अ) मंगलुरु एवं उसके आसपास में ३६ स्वच्छता अभियान चलाया गया। (ब) दक्षिण कन्नड़ जिले के अन्तर्गत कई गाँवों में ५५८ स्वच्छता अभियान चलाया गया। (स) विभिन्न महाविद्यालयों में ३५ सेमीनार किये गये, जिसमें १२,३०० युवकों ने भाग लिया। २. रामहरीपुर केन्द्र द्वारा बाकुड़ा जिले के बिर्राह गाँव में ५७ शौचालयों का निर्माण किया गया।

रामकृष्ण मठ के अन्तर्गत चलायी जा रही निम्नलिखित परियोजनाएँ उल्लेखनीय हैं

१. राजकोट केन्द्र द्वारा संचालित चिकित्सालय में दन्त चिकित्सा विभाग प्रारम्भ किया गया। २. बेलूड़ मठ में साधु निवास के पास गैंगवे तथा नौका घाट का निर्माण कराया गया। ३. काकुड़गाछी केन्द्र द्वारा दवाखाना हेतु एक भवन का निर्माण कराया गया। ४. श्यामपुकुरबाटी द्वारा सेवा-कार्य के विस्तार हेतु ४ मंजिला भवन का क्रय किया गया।

भारत के बाहर निम्नलिखित परियोजनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं

१. विरासत परिषद कैलिफोर्निया द्वारा सैन्फांसिस्को केन्द्र को पुराने मंदिरों के जीर्णोद्धार एवं संरक्षण के लिए प्रमाण पत्र प्रदान किया गया। २. चाँदपुर (बंगलादेश) केन्द्र में नव निर्मित विवेकानन्द भवन और ब्रह्मानन्द भवन का उद्घाटन हुआ।

रामकृष्ण मठ और मिशन द्वारा कई **राहत और पुनर्वास कार्यक्रम चलाये गये** – आपदा प्रभावित, विशेषकर बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में केरल, कर्नाटक, उत्तर-पूर्वी क्षेत्र तथा अन्य भागों में आये चक्रवात जैसे – तितली और गाजा से प्रभावित आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु और पश्चिमबंगाल में राहत और पुनर्वास के विभिन्न कार्यक्रम चलाये गये। इस कार्य में ४२.४१ करोड़ रुपये खर्च हुए तथा ९.७३ लाख लोग लाभान्वित हुए।

इस वर्ष मठ और मिशन के द्वारा **जन-कल्याण-कार्य** में गरीब छात्रों, वृद्ध, बेसहारा एवं बीमार लोगों को आर्थिक सहायता के रूप में २१.४५ करोड़ रुपये खर्च किए गए।

१० अस्पतालों, ८८ चिकित्सा-केन्द्रों, ४१ सचल चिकित्सा-इकाइयों, ९१६ चकित्सा शिविरों के माध्यम से ७८.३२ लाख लोगों को **चिकित्सा सेवा** प्रदान की गयी जिसमें २५९.४२ करोड़ रुपये खर्च हुए।

शिक्षा के क्षेत्र में बालवाड़ी से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक, औपचारिक शिक्षा केन्द्रों, रात्रिकालीन विद्यालयों, कोचिंग कक्षाओं आदि में पढ़नवाले लगभग २.६८ लाख विद्यार्थियों पर ३५७.९७ करोड़ रुपये व्यय हुए।

ग्रामीण और आदिवासी विकास परियोजनाओं के अन्तर्गत ७३.२१ करोड़ रुपये व्यय किये गये, जिससे ७०.५६ लाख लोग लाभान्वित हुए।

इस अवसर पर हम रामकृष्ण मठ और मिशन द्वारा संचालित सेवा-कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने में मिशन के सदस्यों एवं मित्रों को उनकी सहभागिता एवं सहयोग हेतु हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

स्वामी सुवीरानन्द

महासचिव

१५ दिसम्बर, २०१९

प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

(फार्म ४ नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान - रायपुर

२. प्रकाशन की नियतकालिकता - मासिक

३.-४. मुद्रक एवं प्रकाशक - स्वामी सत्यरूपानन्द

५. सम्पादक - स्वामी प्रपत्त्यानन्द

राष्ट्रीयता - भारतीय

पता - रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

स्वत्वाधिकारी - रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के ट्रस्टीगण - स्वामी स्मरणानन्द, स्वामी प्रभानन्द, स्वामी वागीशानन्द, स्वामी गौतमानन्द, स्वामी सुहितानन्द, स्वामी शिवमयानन्द, स्वामी भजनानन्द, स्वामी गिरीशानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द, स्वामी दिव्यानन्द, स्वामी सुवीरानन्द, स्वामी बोधसारानन्द, स्वामी तत्त्वविदानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी लोकोत्तरानन्द, स्वामी ज्ञानलोकानन्द, स्वामी मुक्तिदानन्द, स्वामी ज्ञानव्रतानन्द, स्वामी सत्येशानन्द और स्वामी अच्युतेशानन्द।

मैं स्वामी सत्यरूपानन्द घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

(हस्ताक्षर)

स्वामी सत्यरूपानन्द